अभिनव कृषि

वर्ष–6 अंक–3 सितम्बर–2024 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● रबी फसल उत्पादन तकनीक ● रबी फसलों में खरपतवार, कीट एवं व्याधि प्रबंधन ● सिंचाई जल प्रबंधन

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
12वाँ स्थापना दिवस
एवं
हिन्दी दिवस
14 सितम्बर, 2024
ATMQIC Chair-51
ATMQIC Chair-50
ATMQIC Chair-71
ATMQIC Chair-62

प्रसार शिक्षा परिषद की पंचम बैठक

कृषि विश्वविद्यालय
कृषि विज्ञान केन्द्र स्वर्ण जयंती मशाल संचलन अभियान

इफको नैनो डीएपी (तरल)

₹600/- | 500 मिली

बीज अंकुरण दर बढ़ाए

जड़ों का करे बेहतर विकास

खेती की लागत कम करे

रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग घटाए

जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण कम करे

#IFFCONanoUrea

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

इफको नैनो यूरिया तरल

पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!

लागत कम करने में सहायक

मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए

पौधों के पोषण में सहयोगी

किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि

फसल उपज को बढ़ाए

पारंपरिक यूरिया से सस्ता

FOLLOW US:

IFFCO
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्धारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर
0744-2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. प्रताप सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. प्रताप सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ.प्रताप सिंह

अभिनव कृषि

वर्ष–6 अंक–3 सितम्बर–2024 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
माननीय कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. घनश्याम मीना
सह आचार्य (पशुपालन विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. डी.एल. यादव
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. अरविन्द नागर
विषय विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. रूप सिंह
विषय विशेषज्ञ (पौध सरंक्षण)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.एस.के. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आशुतोष मिश्रा
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. वीरेन्द्र सिंह
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

वैश्विक स्तर पर कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों एवं आधुनिक उपकरणों के इस्तेमाल में काफी तेजी देखने को मिली है। कृषि के बदलते इस परिवेश मे कृत्रिम बुद्धिमता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हैं। इससे हम फसलो की वृद्धि, मिट्टी की गुणवत्ता और मौसम के आंकडो का विश्लेषण करके फसल उत्पादन में सुधार कर सकते है। फसल उत्पादन में ड्रोन और रोबोटों का उपयोग फसल निगरानी, कीट नियंत्रण और हार्वेस्टिग में किया जाने लगा है जिससे काम की गति और दक्षता बढती है। कृत्रिम बुद्धिमता तकनीकें, कीटो और रोगों का पहले से पता लगाने में सक्षम होती है जिससे किसान भाई समय पर उपचार कर सकें, साथ ही पानी, उवर्रक एवं अन्य संसाधनो का कुशल उपयोग करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमता आधारित प्रणाली कृषि को और अधिक प्रभावी और टिकाऊ बनाने में सहायक सिद्ध होगी। इन तकनीकों से हमारी खेती की प्रक्रिया को ओर अधिक उत्पादक और प्रभावी बनाने में मदद मिलेगी। अतः कृषक, कृषि उद्यमी एवं अन्य हितधारकों से आग्रह करता हूँ कि अपने अनुभवों और ज्ञान का अधिक एवं कुशल उपयोग में कृत्रिम बुद्धिमता के विभिन्न तकनीकीयों को फसल उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण एवं बाजार प्रक्रिया हेतु उपयोग में लेवें।

किसान भाईयों के लिए यह समय बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें खरीफ फसलों की कटाई एवं रबी की फसलों विशेषकर गेहूँ, चना, सरसों की बुवाई की तैयारियों में जुटे होगें। पत्रिका के प्रस्तुत इस अंक में कृषि समय सामयिकी विषयों पर आलेखों जैसे सरसों की उन्नत उत्पादन एवं प्रबंधक तकनिकीयां, ईसबगोल की व्यवसायिक खेती, चने के प्रमुख कीट एवं व्याधियों की रोकथाम, रबी फसलों मे जल प्रबंधन के विभिन्न आयाम, शून्य जूताई, मारकोराइजा –सहजीवी फफूंद, कृत्रिम बुद्धिमता एवं कुछ सफल किसानों की कहानियों इत्यादि को सम्मिलित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक किसानों, कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं,हितधारकों एवं पाठकों हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। मैं सभी पाठकों से इस पत्रिका को और अधिक किसान उपयोगी बनाने के लिए अपने विचार चाहता हूँ। अन्त में पत्रिका के सभी पाठकों, लेखकों, पत्रिका के सम्पादक मण्डल एवं सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाईयां एवं शुभकामनाऐं देता हूँ।

जय हिन्द !

(प्रताप सिंह)

अभिनव कृषि

वर्ष–6 अंक–3 सितम्बर–2024

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	माइकोराइजा : फसलों की उत्पादकता और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने वाली महत्वपूर्ण सहजीवी फफूंद अजय शर्मा, प्रवेश सिंह चौहान, पुष्पेन्द्र शर्मा एवं मीना राठौर	1
2.	मसूर की फसलः उत्पादन और प्रबंधन के महत्वपूर्ण पहलू पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं मंजू मीना	2-5
3.	सरसों की उन्नत उत्पादन एवं प्रबन्धन तकनीक के.सी. मीना, मुकेश चन्द गोयल एवं भवानी शंकर मीणा	6-8
4.	रबी की प्रमुख फसलों में बीजोपचार द्वारा पौध संरक्षण रामजीलाल मीना, राजेश, आकाश तंवर एवं भगवान सिंह	9
5.	चने के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका प्रबंधन सरिता, रूप सिंह, आर.के. बैरवा एवं अरविन्द नागर	10-11
6.	रबी फसलों में खरपतवार प्रबंधन उदिति धाकड़, शालिनी मीणा, के. एम. शर्मा एवं एस.एल. यादव	12-16
7.	राजस्थान के दक्षिण–पूर्व क्षेत्र में ईसबगोल की व्यवसाहिक खेती एवं उपयोग भुवनेश नागर, गगनदीप सिंह, हनुमान सिंह एवं भूरी सिंह	17
8.	शून्य जुताई : टिकाऊ कृषि और मृदा स्वास्थ्य की कुंजी शालिनी मीणा, उदिति धाकड़ रामकिशन मीणा एवं वर्षा गुप्ता	18-19
9	कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं कृषि नरेश कुमार, रोनक कूड़ी एवं जितेंद्र कुमार	20-21
10.	कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन में उन्नति संदीप कुमार, रघु नन्दन शर्मा, मृणाल पाण्डेय एवं सोनू डांगी	22-23
11.	कृषि पर जलवायु परिवर्तन के परिणाम रौनक कुड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया	24-25
12.	दाना मटर की उन्नत प्रजातियाँ एवं उत्पादन तकनीक खजान सिंह, राजेश कुमार एवं के.सी. मीना	26-27
13	तकनीकी खेती की दिशा में बढ़ते कदम और रोजगार : एक सफलता की कहानी राजेश कुमार शर्मा एवं प्रताप सिंह	28
14.	बकरी पालन से मुनाफा घनश्याम मीणा, दीपक कुमार, हरीश वर्मा एवं इन्दिरा यादव	29

माइकोराइजा : फसलों की उत्पादकता और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने वाली महत्वपूर्ण सहजीवी फफूंद

अजय शर्मा, प्रवेश सिंह चौहान, पुष्पेन्द्र शर्मा एवं मीना राठौर
कृषि विज्ञान केन्द्र, अंता–बारां एवं सुक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली

माइकोराइजा, एक ग्रीक शब्द माइको–(फफूंद) और राइज़ा (जड़) से उत्पन्न हुआ है, जो पौधों और फफूंद के बीच एक महत्वपूर्ण सहजीवी संबंध को दर्शाता है। यह फफूंद सामान्यतः मृदा में पायी जाती है और अपनी जीवनशैली के लिए फसलों की जड़ों में प्रवेश कर एक सहजीवी संबंध स्थापित करती है। लगभग 95 प्रतिशत पौधों की प्रजातियों में माइकोराइजा का यह संबंध पाया जाता है। माइकोराइजा मृदा जैविकी और मृदा रसायन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि ये फफूंद पौधों की जड़ों पर निर्भर होती हैं और मृदा जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं।

माइकोराइजा की कार्यप्रणाली : माइकोराइजा का एक जटिल नेटवर्क विकासशील जड़ों को घेर लेता है या सीधे जड़ों की कोशिकाओं में प्रवेश करता है, जिससे पौधे और फफूंद के बीच एक सहजीवी संबंध बनता है। इस सहयोग में, पौधे फफूंद को जैविक अणु (शर्करा) प्रदान करता है, जबकि फफूंद पौधे को पानी और आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है। फफूंद मुख्य रूप से मृदा से विभिन्न प्रकार के तत्व जैसे फास्फोरस, नाइट्रोजन और अन्य सूक्ष्म मात्रिक पोषक तत्वों को अवशोषित करने में पौधों की मदद करती हैं। इसके परिणामस्वरूप, फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है और पौधों की सूखा सहनशीलता में सुधार होता है। इसी कारण, माइकोराइजा को प्राकृतिक जैव उर्वरक के रूप में भी जाना जाता है।

माइकोराइजा के प्रकार : माइकोराइजा को मुख्यतः दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है।

1. एक्टोमाइकोराइजा
यह फफूंद पौधों की जड़ों की कोशिकाओं के ऊपर एक आवरण बनाती है। कभी–कभी, यह क्यूटिकल कोशिका के अंदर भी प्रवेश कर सकती है। आमतौर पर, यह लकड़ी के पौधों (जैसे बीच, बर्च, विलो, ओक, पाइन, देवदार और स्प्रूस) से संबंधित होती है। लगभग 10 प्रतिशत पौधों के परिवारों में एक्टोमाइकोरिजल संबंध पाए जाते हैं।

2. एंडोमाइकोराइजा : यह फफूंद पौधे की जड़ों की कोशिकाओं में प्रवेश करती है। एंडोमाइकोरिजा 80 प्रतिशत से अधिक पौधों के परिवारों में पाई जाती हैं, जिनमें ग्रीनहाउस और सब्जियां, फूल, घास और फलों के पेड़ शामिल हैं। एंडोमाइकोरिजा कई प्रकार की होती हैं, जैसे अर्बुस्कुलर, अर्बुटॉइड, एरिकॉइड, मोनोट्रोपॉइड और ऑर्किड माइकोराइजा।

माइकोराइजा के उपयोग की विधियाँ : माइकोराइजा का प्रभावी उपयोग फसलों की उपज और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसके उपयोग की विधियाँ निम्नलिखित हैं।

1. फसल बुवाई से पूर्व : फसल बोने से पहले, जड़ों को प्रति लीटर पानी में 5 मिली. माइकोराइजा घोल में मिला दें ताकि पौधों की जड़ें अच्छी तरह से विकसित हो सकें। यदि माइकोराइजा पाउडर के रूप में उपलब्ध हो, तो 250 ग्राम उत्पाद को 100 से 200 लीटर पानी में मिलाकर खेत में बोने से पहले पौधों को 2 से 3 घंटे के लिए डुबो कर रखें।

2. मिट्टी उपचार : खेत की तैयारी के दौरान, प्रति एकड़ मृदा में 4–5 किलो ग्राम माइकोराइजा कल्चर को 200 किलो ग्राम सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर खेत में बिखेर दें। इसके बाद पौधों की रोपाई (धान) या बीज की बुवाई (लहसुन, गेहूं, चना, मटर, अरहर, उडद, मूंग, मसूर आदि) की जा सकती है।

3. जड़ उपचार : शाकभाजी और अन्य रोपण वाली फसलों में, माइकोराइजा कल्चर का पानी में घोल (20 ग्राम कल्चर, 15–20 ग्राम गुड़ 1 लीटर पानी) बनाकर पौधों की जड़ों को 15–20 मिनट तक डुबोकर रखने के बाद रोपाई करनी चाहिए।

4. वृक्षारोपण : वृक्षारोपण के समय 5 ग्राम कल्चर को 3 ग 3 फीट के गड्ढे के बीचो–बीच 3–4 इंच की गहराई पर मिलाकर पौधे रोपण करें। पुराने बागों में फरवरी से जुलाई के बीच, इन गड्ढों में गोबर की खाद देते समय 5–10 ग्राम कल्चर मिलाकर दें।

माइकोराइजा इकाई स्थापित करने की विधि : माइकोराइजा इकाई स्थापित करने के लिए धूप, बारिश, और अन्य मौसमीय प्रभावों से सुरक्षित एक उपयुक्त स्थान का चयन करे। 100 सेमी x 50 सेमी x 50 सेमी आकर का गड्ढा बनाये। इस गड्ढे मे प्लास्टिक शीट्स बिछा दे। अब तैयार गड्ढो को मिट्टी से भर दे। इसके उपरान्त माइकोराइजा स्टार्टर इनोकुलम को (2 प्रतिशत) मिट्टी में डाले एवं चुने हुए पौधों की प्रजातियों (ज्वार–जौ, ज्वार–जौ, मक्का–जौ) के बीजों की बुवाई कर दे। मिट्टी को नियमित रूप से पानी देते रहें। कुछ दिनों मे ये पौधे माइकोरिजल कवक से संक्रमित हो जाएंगे, जो कवक कई गुना बढ़ जाएंगे। अब इस मिट्टी को माइकोराइजा के प्रमुख स्रोत के रूप में उपयोग कर सकते है।

लक्षित फसलें : नर्सरी में उगाई गई फसलें, संरक्षित खेती के तहत उगाई जाने वाली फसलें और टिशू कल्चर फसलों के लिए जहां यह रोपाई से पहले जड़ों को मजबूत बनाने में सहायक होता है।
संगठित फसलें : गेहूं, जौ, मक्का, मिलेट, सोरघम
दलहनी फसलें : राजमा, मटर, दाल, अल्फाअल्फा, क्लोवर
ऑलियम फसलें : प्याज, लीक, लहसुन
वनस्पति फसलें : सर्पगंधा, टमाटर
वृक्षारोपण फसलें : नीम, पीपल आदि।

माइकोराइजा के लाभ : इसके उपयोग से पोषक तत्वों और पानी का अवशोषण बढ़ाता है, सिंचाई की आवश्यकता कम व खाद की मांग घटाता है। सूखे के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, पौधों के स्वास्थ्य और तनाव के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। फास्फोरस की उपलब्धता 60–80 प्रतिशत तक बढ़ाता है। मिट्टी की गुणवत्ता और संरचना में सुधार करता है। मिट्टी के कटाव को रोकता है।

माइकोराइजा एक अत्यंत प्रभावशाली जैविक उर्वरक है, जो फसलों की उत्पादकता और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके उपयोग से न केवल फसलों की वृद्धि और स्वास्थ्य में सुधार होता है, बल्कि मिट्टी की संरचना और गुणवत्ता भी बेहतर होती है। इस प्रकार, माइकोराइजा का सही ढंग से उपयोग कृषि में दीर्घकालिक सफलता और स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है।

मसूर की फसल: उत्पादन और प्रबंधन के महत्वपूर्ण पहलू

पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं मंजू मीना
कृषि महाविद्यालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

भारत दुनिया में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक (वैश्विक उत्पादन का 25% उपभोक्ता (विश्व खपत का 27%) और आयातक (14%) है। खाधान्नो के तहत आने वाले क्षेत्र में दलहन का हिस्सा लगभग 20% हैं और देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में इसका योगदान लगभग 7–10% हैं। यधपि दालें खरीफ, रबी व जायद तीनों ऋतुओं में उगाई जाती हैं, लेकिन रबी के मौसम की दालें कुल उत्पादन में 60 % से अधिक योगदान देती हैं। देश में छः राज्य मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और गुजरात प्रमुख दलहन उत्पादक राज्य है। मसूर दलहनी फसलों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिसका वानस्पतिक नाम विसिया लेंस या लेंस कुलिनारिस है। इस फसल की प्रकृति गर्म, शुष्क, रक्तवर्द्धक एवं रक्त में गाढ़ापन लाने वाली होती है। दलहनी फसलों में मसूर का एक महत्वपूर्ण स्थान है। मसूर की दाल को लाल दाल के नाम से भी जाना जाता है। मसूर की खेती सामान्य तौर पर रबी में की जाती है, जिसकी खेती सिंचित क्षेत्रों के साथ–साथ असिंचित क्षेत्रों में भी आसानी से की जा सकती है।

फूल आने से पहले खेत में मसूर के पौधे

दलहनी फसलों में विशेष गुणों यथा जैविक नत्रजन स्थिरीकरण, मृदा उर्वरता पुनरुध्दार, पोषक खाध ऋणात्मक कार्बन पदचिन्ह, निम्न जल आवश्यकता एवं कठोर जलवायु में भी अच्छी तरह से पनपने के कारण टिकाऊ कृषि में अव्दितीय स्थान है। मसूर उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। मसूर की खेती व्यापक रूप से सम्पूर्ण यूरोप, एशिया और उत्तरी अफ्रीका में की जाती हैक मसूर उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है।

भारत में मसूर का कुल क्षेत्रफल 1.41 मिलियन हेक्टेयर, उत्पादन 1.27 मिलियन टन एंव उत्पादकता 899 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। इसी अवधि के दौरान राजस्थान में 16073 हेक्टेयर क्षेत्रफल में 1326 किलोग्राम हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 20018 टन का उत्पादन हुआ। उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय के अनुसार, भारत 2023–24 फसल वर्ष के दौरान, अधिक क्षेत्रफल के कारण मसूर दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक बनने के लिए तैयार है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से मसूर उत्पादन में मध्यप्रदेश प्रथम स्थान पर आता है, जहाँ पर 5.85 लाख हेक्टेयर (देश के मसूर क्षेत्रफल का 39.56 प्रतिशत) क्षेत्रफल में मसूर की खेती की जाती है। उसी प्रकार मसूर का क्षेत्रफल के अनुसार उत्तर प्रदेश व बिहार में क्रमशः 34.36 प्रतिशत व 12.40 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ द्वितीय व तृतीय स्थान पर है। मध्यप्रदेश में मसूर की खेती मुख्य रूप से विदिशा, सागर, रायसेन, दमोह, जवलपुर, समना, पन्ना, रीवा, नरसिंहपुर, सीहोर एवं अशोकनगर जिलो में की जाती है। राजस्थान में बूंदी, भीलवाडा, चित्तौड़गढ़, अलवर, बारां, अजमेर, बांसवाडा व बीकानेर जिलों में मसूर की खेती की जाती है। मसूर फसल की मिश्रित फसल के रूप में खेती करना काफी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। मसूर फसल के साथ–साथ सरसों–मसूर, जौ–मसूर की खेती सफलतापूर्वक करके काफी अच्छा लाभ कमाया जा सकता है।

वानस्पतिक विवरण : दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मसूर फसल के लिए विभिन्न नामों का उपयोग किया जाता है। मसूर एक वार्षिक पौधा है जो कि फेबेसी कुल से सम्बंधित है। मसूर की फसल अधोभूमिक होती है, जिसका अर्थ है कि अंकुरित बीज के बीज–पत्र भुमि में और बीज के आवरण के अंदर रहते हैं। इसलिए, यह ठंढ, हवा के कटाव या कीट के हमले के प्रति कम संवेदनशील होता है। यह पौधा द्विगुणित, वार्षिक, झाड़ीदार शाक है जो सीधा, अर्ध सीधा या फैलता हुआ और सघन विकास वाला होता है और सामान्यतः इसकी ऊंचाई 30 से 50 सेंटीमीटर (12 से 20 इंच) तक होती है। इसकी कई रोएँदार शाखाएँ होती हैं और इसका तना पतला और कोणीय होता है। पुष्पक्रम पर पाँच से आठ जोड़े में 10 से 15 पत्रक होते हैं। इसकी पत्तियाँ वैकल्पिक, आयताकार–रैखिक आकार की होती हैं और पीले–हरे से लेकर गहरे नीले–हरे रंग की होती हैं। मसूर के फूल, जिनकी संख्या एक से चार होती है, जो छोटे, सफेद, गुलाबी, बैंगनी, हल्के बैंगनी या हल्के नीले रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ आयताकार, थोड़ी फूली हुई और लगभग 1.5 सेंटीमीटर (5x8 इंच) लंबी होती हैं। आम तौर पर प्रत्येक फली में दो बीज होते हैं, जिनका व्यास लगभग 0.5 सेंटीमीटर (1/4 इंच) होता है, जो विशिष्ट ज्यामिति के आकार में होते हैं। मसूर की खेती की जाने वाली कई किस्में आकार, बाली और पत्तियों, फूलों और बीजों के रंग में भिन्न होती हैं।

मसूर फसल एक स्वयं परागित फसल हैं। इसमें फल सबसे निचली कलियों से शुरू होते हैं और धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हैं, जिसे एक्रोपेटल फूल कहते हैं। इसमें एक ही शाखा पर सभी फूल खिलने में लगभग दो सप्ताह लगते हैं।

महत्व : मसूर की दाल का सेवन नियमित पाचन क्रिया में अत्यधिक लाभकारी होता है। मसूर के 100 ग्राम दाने में औसतन 25 ग्राम प्रोटीन, 1.3 ग्राम वसा, 60.8 ग्राम कार्बोहाइडेट, 3.2 ग्राम रेशा, 68 मिलीग्राम कैल्शियम, 7 मिलीग्राम लोहा, 0.21 मिलीग्राम राइबोफ्लेविन, 0.51 मिलीग्राम थाइमिन और 4.8 मिलीग्राम नियासिन पाया जाता है जो शरीर के लिए अतिआवश्यक तत्व होते हैं।

दालों को लंबे समय तक भिगोने और किण्वन या अंकुरित करके फाइटेट्स को कम किया जा सकता है। मसूर का सेवन करने से उदर के विकार समाप्त हो जाते हैं क्योकि इसमें अन्य दालों की अपेक्षा सर्वाधिक पौष्टिकता पाई जाती है। मसूर की दाल रोगियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद मानी जाती है। मसूर का उपयोग दाल के अलावा अनेक प्रकार की नमकीन और मिठाइयां बनाने में भी किया जाता है। इसका हरा व सूखा चारा जानवरों के लिए स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है।

मृदा व जलवायु : मसूर की बुवाई का उपयुक्त समय रबी में मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक होता है। मसूर की खेती के लिए हल्की दोमट मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त रहती है। इसके अलावा लाल लेटेराइट मिट्टी में भी इसकी खेती अच्छी प्रकार से की जा रही है। मसूर की अच्छी फसल के लिए मिट्टी का पीएच मान 5.8 से 7.5 के बीच होना चाहिए। पौधों की वृद्धि के लिए ठंडी जलवायु, परंतु फसल पकने के समय उच्च तापक्रम की आवश्यकता होती है। मसूर की फसल वृद्धि के लिए 18 से 30 डिग्री सेटीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। इसके उत्पादन के लिए वे क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं, जहां 80–100 सेंटीमीटर तक वार्षिक वर्षा होती है। मसूर की खेती बिना सिंचाई के भी बारानी परिस्थिति के वर्षा नमी संरक्षित क्षेत्र में भी की जा सकती है।

उन्नत किस्में : भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए मसूर की नवीनतम अनुमोदित किस्में इस प्रकार हैं –

कोटा मसूर–1 (आर.के.एल. 607–1): यह किस्म वर्ष 2018 में कृषि–विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा विकसित की गयी है। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है, जो कि लगभग 98–107 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 12–14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह सूखा और उच्च तापमान सहनशील किस्म गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश व राजस्थान क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

कोटा मसूर–2 (आर.के.एल. 14–20): यह किस्म भी वर्ष 2018 में कृषि–विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा विकसित की गयी है। यह भी एक शीघ्र पकने वाली किस्म है, जो कि लगभग 97–104 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह उचित समय पर बुवाई हेतु उपयुक्त सूखा और उच्च तापमान सहनशील किस्में छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व राजस्थान क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई हैं।

कोटा मसूर–3 (आर.के.एल. 605–03): यह किस्म कृषि–विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्ष 2020 में विकसित की गयी है। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है, जो कि लगभग 105–115 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म की औसत उपज 18–19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह एक वर्षा आधारित सामान्य बुवाई हेतु उपयुक्त सूखा और उच्च तापमान सहनशील किस्म छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश व राजस्थान क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

कोटा मसूर–4 (आर.के.एल. 58 F 3715): यह किस्म कृषि–विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्ष 2021 में विकसित की गयी है। यह किस्म शीघ्र पकने वाली लगभग 110 से 120 दिन में तैयार होकर 18–19 क्विंटल उपज देती है। यह रस्ट रोग प्रतिरोधी तथा उकठा रोग सहनशील किस्म है। यह भी एक वर्षा आधारित उचित समय पर बुवाई हेतु उपयुक्त किस्म छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश व राजस्थान क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई हैं।

कोटा मसूर–6 (आर.के.एल. 20–26(D): यह किस्म कृषि–विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्ष 2024 में विकसित की गयी है। यह किस्म भारत के उत्तर–पश्चिमी समतल क्षेत्रों में 125 दिन एवं केंद्रीय क्षेत्रों में 111 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी किस्म की औसत उपज 17.37 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उत्तर–पश्चिमी समतल क्षेत्रों में एवं 16.0 क्विंटल प्रति हेक्टेयर केंद्रीय क्षेत्रों में है। यह एक वर्षा आधारित रबी में सामान्य बुवाई हेतु उपयुक्त मध्यम रस्ट एवं उकठा रोग प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म में प्रोटीन की औसत मात्रा 21.07 प्रतिशत पायी गयी है।

नरेन्द्र मसूर–1 (एनएफएल–92): यह किस्म 120 से 130 दिन में तैयार होकर 15–20 क्विंटल उपज देती है। यह रस्ट रोग प्रतिरोधी तथा उकठा रोग सहनशील किस्म है ।

पूसा–1: यह किस्म शीघ्र पकने (100–110 दिन) वाली है। इसकी औसत उपज 18–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100 दानो का वजन 2.0 ग्राम है। यह जाति सम्पूर्ण मध्य प्रदेश क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।

पन्त एल–406: यह किस्म लगभग 150 दिन में पककर तैयार होती है, जिसकी उपज क्षमता 12 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह रस्ट रोग प्रतिरोधी किस्म उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम के मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई है ।

आई.पी.एल.–526: यह किस्म लगभग 105–112 दिन में पकती है, जिसकी पैदावार 10–15 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह उकठा और रस्ट रोग सहनशील किस्म है, जो कि उत्तर प्रदेश क्षेत्र के लिए उपयुक्त पाई गई है। इस किस्म के बडे आकार के 100 दानो का वजन 3.0 ग्राम है।

आई.पी.एल.–220: यह एक बायोफोर्टिफाइड किस्म है। यह किस्म लगभग 120–125 दिन में पक जाती है, इसकी औसत उपज 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसके छोटे आकार के 100 दानो का वजन 2.4 ग्राम है। यह उकठा, रस्ट रोग प्रतिरोधी, उच्च जिंक व आयरन युक्त किस्म देश के उत्तर–पूर्व समतल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई है।

आई.पी.एल.–534: यह एक शीघ्र लगभग 100–107 दिन में पककर तैयार होने वाली किस्म है। इसकी उपज क्षमता 14–16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह उकठा और रस्ट रोग प्रतिरोधी किस्म मध्य प्रदेश क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसके बडे आकार के 100 दानो का वजन 3.2 ग्राम है।

आई.पी.एल.–316: मसूर की यह किस्म मध्य भारत के वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसके पौधे का रंग हल्का हरा व पत्तियों पर सघन रोये पाये जाते है एवं पौधों की ऊचाई 30–40 सेमी. होती है। इसका दाना मोटा एवं 100 दानों का भार 3.0 ग्राम होता है। यह किस्म लगभग 110–115 दिन में पककर 10–13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दाना उपज देती है। यह किस्म उकठा व रतुआ के प्रति सहनशील पायी गयी है।

एल.–4727: यह किस्म वर्ष 2018 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली द्वारा विकसित की गयी है। यह किस्म लगभग 110–120 दिन में पक जाती है, इसकी औसत उपज 11–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म के दाने बडे आकार के होते है। यह उचित समय पर बुवाई हेतु उपयुक्त मध्यम उकठा प्रतिरोधक किस्में देश के उत्तर–पश्चिमी समतल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई है ।

एल.–4729: यह किस्म वर्ष 2020 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली द्वारा विकसित की गयी है। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है, जो कि लगभग 96–110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 17–18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह एक वर्षा आधारित सामान्य बुवाई हेतु उपयुक्त मध्यम उकठा प्रतिरोधी किस्म देश के उत्तर–पश्चिमी समतल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई है।

खेत की तैयारी, बीजोपचार, बुवाई : मसूर की खेती करने से पहले खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लें। इसके लिए सर्वप्रथम खरीफ फसल काटने के बाद संरक्षित नमी की कमी की स्थिति में पलेवा करके और 2 से 3 आड़ी–खड़ी जुताइयां देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए, जिससे मिट्टी भुरभुरी व नरम हो जाए और प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगा कर मिट्टी को बारीक और समतल कर लें। यदि खेत की मिट्टी भारी व मटियार है तो एक दो जुताइयां अधिक करनी पड़ सकती हैं। इस प्रकार मसूर की बुवाई भली प्रकार से तैयार किए गए खेत में करें।

मसूर की समय से बुवाई के लिए उन्नत किस्मों के 30 से 35 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है, जबकि देरी से बुवाई के लिए 50 से 60 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। आमतौर पर मिश्रित फसल में मसूर की बीज दर आधी रखी जाती है। मसूर की बुवाई से पहले बीजों को थाइरम या बाविस्टिन 3 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। मसूर के बीजों को राइजोबियम कल्चर और स्फुर घोलक जीवाणु पीएसबी कल्चर से 5 ग्राम से कुल 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर छायादार स्थान में सुखा कर इसकी बुवाई करें। इसकी बुवाई सुबह या शाम के समय ही करना उचित है।

मसूर की बुवाई सीड ड्रिल द्वारा की जाती है। पोरा विधि अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करने पर बीज उचित गहराई और समान दूरी पर गिरते हैं। अगेती फसल की बुवाई पंक्तियों में 30 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए, जबकि पछेती फसल की बोआई के लिए पंक्तियों की दूरी 20 से 25 सेंटीमीटर रखते हैं। मसूर का बीज अपेक्षाकृत छोटा होने के कारण इसकी 3–4 सेंटीमीटर उथली बुवाई उचित होती है। आज के समय में, मसूर की बुवाई शून्य जुताई तकनीक से भी जीरो टिल सीड ड्रिल के द्वारा की जा रही है।

खाद एवं उर्वरक : मसूर फसल के लिए सिंचित अवस्था में 20 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश व 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से बीज बोआई करते समय डालना चाहिए। वही असिंचित दशा में क्रमशः 15 किलोग्राम नाइट्रोजन, 30 किलोग्राम फास्फोरस, 10 किलोग्राम पोटाश व 10 किलोग्राम सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय कूंड़ में देना उचित रहता है। फास्फोरस को सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में देने से आवश्यक सल्फर तत्त्व की पूर्ति भी हो जाती है। जस्ता की कमी वाली भूमियों में जिंक सल्फेट 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से अन्य उर्वरकों के साथ दिया जा सकता है।

सिंचाई : मसूर एक सूखा सहनशील फसल है। आमतौर पर इस दलहनी फसल में सिंचाई नहीं की जाती है, फिर भी सिंचित क्षेत्रों में 1 से 2 सिंचाई करने से उपज में वृद्धि होती है। मसूर में पहली सिंचाई शाखा निकलते समय अर्थात बोआई के 40 से 45 दिन बाद और दूसरी सिंचाई फलियों में दाना भरते समय बुवाई के 70 से 75 दिन बाद करनी चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि पानी अधिक न होने पाए। इसमें सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर का उपयोग किया जा सकता है। मसूर के खेत में स्ट्रिप बना कर भी हल्की सिंचाई करना लाभकारी रहता है। इसलिए खेत में जल निकास का उत्तम प्रबन्ध होना आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रण : मसूर की फसल में खरपतवारों द्वारा अधिक हानि होती है। जिससे फसल की उपज और गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पडता है और यदि समय पर खरपतवार नियंत्रण पर ध्यान नहीं दिया जाये तो उपज में 30 से 35 फीसदी तक की कमी आ सकती है। इसलिए 45 से 60 दिन के अंतर में खरपतवार निकालने का कार्य करते रहना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए खुरपी अथवा कस्सी से गुड़ाई करके भी काफी हद तक नियन्त्रण किया जा सकता है। रासायनिक उपचार के तौर पर किसान द्वारा पेन्डीमेथलीन 30 ईसी की 3 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर का प्रयोग अंकुरण पूर्व करके भी खरपतवार नियंत्रण कर सकते हैं।

कटाई : मसूर की फसल लगभग 110 से 140 दिन में पक जाती है। इसको बोने के समय के अनुसार मसूर की फसल की कटाई फरवरी व मार्च महीने में की जाती है। जब 70 से 80 प्रतिशत फलियां भूरे रंग की हो जाएं और पौधे पीले पड़ने लगें अर्थात्त पक जाएं तो फसल की कटाई करनी चाहिए।

पैदावार : यदि मौसम अनुकूल हो और इसकी आधुनिक तरीके से उन्नत खेती की जाए तो अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। मसूर के दानों की उपज 15 से 20 क्विंटल और भूसे की उपज 30 से 35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

मसूर के प्रमुख रोग

उकठा रोग : मसूर में इस रोग का प्रकोप होने पर फसल की जडें गहरे भूरे रंग की हो जाती है तथा पत्तियाँ नीचे से ऊपर की ओर पीली पडने लगती है तथा बाद में सम्पूर्ण पौधा सूख जाता है। यह रोग पौधे पर प्रारंभिक अवस्था में होता है। पौधे का तना भूमि सतह के पास सड जाता है। जिससे पौधा खींचने पर बडी आसानी से निकल आता है। इसके सडे हुये भाग पर सफेद फफुंद उग आती है जो सरसों की राई के समान भूरे दाने वाले फफूद के स्केलेरोशिया है। यह रोग मसूर के पौधो पर देरी से प्रकट होता है, जिससे रोग ग्रसित पौधे खेत में जगह–जगह टुकडों में दिखाई देते है व पत्ते पीले पड जाते है तथा पौधे सूख जाते है। जड़े काली पड़कर सड़ जाती है। तथा उखाडने पर अधिकतर पौधे टूट जाते है व जडें भूमि में ही रह जाती है।

रोग प्रबंधन

- गर्मियो में गहरी जुताई करें।
- खेत में पकी हुई गोबर की खाद का ही प्रयोग करें।
- संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करे।
- बीज को 2 ग्राम थाइरम +1 ग्राम कार्वेन्डाजिम से एक किलोग्राम बीज या कार्बोक्सिन 2 ग्राम या 6 से 8 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करनी चाहियें।
- उक्टा निरोधक व सहनशील जातियाँ जैसे जे.एल. 3, जे.एल.1, नूरी, आई.पी.एल. 81 का प्रयोग करें।

गेरूई रोग : गेरूई रोग का प्रकोप जनवरी माह से प्रभावित होता है तथा संवेदनशील किस्मों में इससे अधिक क्षति होती है। इस रोग का प्रकोप होने पर सर्वप्रथम पत्तियों तथा तनों पर भूरे अथवा गुलावी रंग के फफोले दिखाई देते है जो बाद में काले पड जाते है। इस रोग का भीषण प्रकोप होने पर सम्पूर्ण पौधा सूख जाता है। इससे प्रभावित फसल में 0.3: मेन्कोजेब एम–45 का 15 दिन के अन्तर पर दो बार अथवा हेक्जाकोनाजोल 0.1% की दर से छिडकाव करना चाहिये।

बीज उपचार हेतु 2 ग्राम कर्बोक्सिन व थाइरम या 6–8 ग्राम ट्राइकोडर्मा एंव थायोमिथाक्जाम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।

प्रमुख कीट : मसूर की फसल में मुख्य रूप से माहू तथा फलीछेदक कीट का प्रकोप होता है। माहू का नियंत्रण करने के लिए इमिडाक्लोरपिड 150 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर एवं फली छेदक हेतु इमामेक्टीन बेजोइट 100 ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिडकाव करना चाहिये।

निष्कर्ष : मसूर की फसल एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जो पोषण से भरपूर होती हैक इस दाल में प्रोटीन, फाइबर और अन्य पोषक तत्व होते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। आमतौर पर इसकी खेती सूखे क्षेत्रों में की जाती है और इसे कम पानी की आवश्यकता होती है। इसकी खेती मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करती है और फसल चक्र में विविधता लाती है। इसकी कटाई के बाद खेत में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे अगली फसल को लाभ मिलता है। अतः अच्छी पैदावार के लिए उचित बीज चयन, सिंचाई और कीट प्रबंधन आवश्यक हैं। इसलिए उचित प्रबंधन और आधुनिक तकनीकों के उपयोग से मसूर की पैदावार काफी हद तक बढ़ाई जा सकती है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है। अतः आज के जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में टिकाऊ खेती हेतु मसूर की खेती एक महत्वपूर्ण अवयव साबित होगी।

❋❋❋

सरसों की उन्नत उत्पादन एवं प्रबंधन तकनीक

के.सी. मीना, मुकेश चन्द गोयल एवं भवानी शंकर मीना
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

सरसों की खेती सिंचित एवं संरक्षित नमी में बारानी क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। देश के सरसों उत्पादक राज्यों में राजस्थान का पहला स्थान है। यह फसल कम लगात और कम सिंचाई सुविधा में भी अन्य फसलों की तुलना में सबसे अधिक लाभ प्रदान करती है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न उत्पादन तकनीकी के प्रयोग से सरसों की पैदावार में बढ़ातरी की जा सकती है।

उन्नत किस्में

टी–59 (वरूणा) : इसमें तेल की मात्रा 43 प्रतिशत तक होती है। यह सफेद रोली सहनशील किस्म है। तथा 135–140 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म 20–22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

पूसा बोल्ड : 130–140 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म 18–20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसके एक हजार दानों का वजन 6 ग्राम होता है। प्रति फली 13–18 दाने होते है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत होती है।

पूसा जय किसान (बायों 902) : इस किस्म पर सफेद रोली, विल्ट व तुलासिता रोगों का प्रकोप अन्य किस्मों की अपेक्षा कम होता है। दानों में तेल की मात्रा 38–40 प्रतिशत होती है। 130–135 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म 18–20 क्विंटल प्रति हैक्टैयर उपज देती है। उचित शस्य कियाएं अपनाने पर यह किस्म 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पैदावार दे सकती है। इसके 1000 दानों का वजन 5.8 ग्राम होता है।

आर. एच.–30 : यह किस्म सिंचित व असिंचित दोनों स्थितियों में गेंहू, चना व जौ के साथ मिश्रित खेती के लिये तथा देरी से बुवाई के लिए भी उपयुक्त है। 130–135 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म 16–20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसमें तेल की मात्रा 39 प्रतिशत होता है।

डी.एम.एच. 1:–यह किस्म सरसों की हायब्रिड है। यह समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए उपयोगी है। यह किस्म 130–140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 40–41 प्रतिशत तक पायी जातीहै। इसके 1000 दानों का भार 4–5 ग्राम तक होता है।

एन.आर.सी.एच.बी. 506 : यह हायब्रिड भी समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए उपयोगी है। अधिक ऊंचाई वाली (150–160 से.मी.) यह किस्म 130–150 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 40–42 प्रतिशत तक पायी जाती है। इसके 1000 दानों का भार 5–6 ग्राम तक होता है।

आर्शीवाद (आ.के. 01–03) : यह किस्म देरी से बुवाई के लिये (25 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक) उपयुक्त पायी गई है। 120–130 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किसम 13–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। जिसमें तेल की मात्रा 39 से 42 प्रतिशत तक होती है। इसके एक हजार दानों का वजन 3.5 से 4.5 ग्राम होता है।

माया (आर.के. 9902) : किस्म 130–135 दिन में पककर तैयार हो जाती है। सामान्य समय एवं सिंचिंत बुवाई के लिये उपयुक्त है। बीज मोटा एवं काला तथा 1000 दानो का भार 5.0–5.5 ग्राम होता है। तेल की मात्रा 39–40 प्रतिशत तथा पैदावार 25–29 क्विन्टल प्रति हैक्टर तक होती है। यह किस्म पत्ती धब्बा से मध्यम प्रतिरोधी तथा सफेद रोली से प्रतिरोधी है।

गिरिराज (डी.आर.एम.आर.आई.जे.31) : 130–135 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 22–25 क्विन्टल प्रति हैक्टर तक होती है। सिंचित क्षेत्रों में समय से बुवाई के लिए उपयुक्त है। दानों में 41 प्रतिशत तेल व 1000 दानों का भार लगभग 5.0 ग्राम होता है।

एन.आर.सी.एच.बी. 101 : सिंचित क्षेत्रों में (15–30 नवम्बर) देरी से बुवाई की जाने वाली इस किस्म की पकाव अवधि (120 दिन), मध्यम आकार का दाना (1000 दानों का वनज 4.7 ग्राम), तथा तेल की मात्रा 38.9 प्रतिशत हैं। यह सफेद रोली, पत्ती धब्बा रोग स्कलेरोटिनीया रोग तथा चैंपा कीट के प्रति सहनशील पायी गई हैं। यह किस्म औसतन 14–20 दिन क्विं./है उपज देती हैं।

इनके अलावा अन्य विश्वनीय कम्पनियों के किस्मों की बुवाई कर प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार ली जा सकती है। कृपया क्षेत्रीय सिफारिस अनुसार ही किस्मों के चयन में प्राथमिकता देवें।

खेत का चयन एवं तैयारी : सरसों की खेती हेतु सबसे उपयुक्त दोमट मिट्टी होती है फिर भी इसकी भरपूर उपज गहरी उर्वरा एवं अच्छी जलधारण क्षमता वाली हल्की से भारी मिट्टी में भी प्राप्त कर सकते है। खेत की तैयारी करते समय पहले मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी कर लेवे। नमी के अनावश्यक हांस को रोकने के लिये जुताई के बाद पाटा लगा देवे, जिससे खेत समतल भी हो जाता है। दीमक व अन्य कीटों की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व अंतिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रति ात चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालकर जुताई कर मिला देना चाहिये।

सरसों की बारानी खेती के लिए समय–समय पर खेत की स्थिति के अनुसार 4–6 जुताई करें वर्षा के पानी को ज्यादा से ज्यादा संरक्षण करें। सिंचित खेती के लिये खेत की तैयारी बुवाई 3–4 सप्ताह पूर्व प्रारम्भ करें तथा 3–4 जुताई करें।

बीज, बीजोपचार एवं बुआई : शुष्क क्षेत्र में बुवाई हेतु 4–5 कि.ग्रा. तथा सिंचित क्षेत्र में 3–4 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से काम में लेवे। बुवाई के समय पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 से.मी. तथा कतार से कतार की दूरी 30 से 45 से.मी. रखें। साथ ही बीजों की गहराई 4–5 से.मी. तक रखें। बीज को 3 ग्राम मैंकोजेब या थायरम या एपरॉन 35 एस.डी. 6 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बीजाई करें। सरसों फसल में पेन्टेड़ बग कीट नियंत्रण हेतु थायोमिथोक्साम 30 एफ. एस. 5.0 ग्राम या इमिड़ाक्लोप्रिड़ 48 एफ. एस. 6.0 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करना प्रभावी रहता है। बारानी क्षेत्रों में सरसों की बुबाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक एवं सिंचित क्षेत्रों में सिंचित क्षेत्रों में सरसों की बुवाई 10 से 30 अक्टूबर तक करें। इसकी बुवाई के लिये उपयुक्त तापमान 18 से 25 डिग्री सेल्सियस होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन : सिंचित फसल में 8–10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट बुवाई से 20–25 दिन पूर्व खेत में डालकर तैयार करें। सिंचित फसल के लिये 80–100 कि.ग्रा. नत्रजन, 40–50 कि. ग्रा. फॉस्फोरस, 30 किलो पोटाश एवं 300–375 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टेयर देवें। नत्रजन की आधी तथा फॉस्फोरस व पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई से पूर्व ऊर कर देवें। नत्रजन की शेष मात्रा प्रथम सिंचाई के साथ दें। यदि जिप्सम का प्रयोग नहीं किया गया तो 40–50 किलो सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय देवें। असिंचित क्षेत्रों में वर्षा से पूर्व 4–5 टन सड़ी हुई देशी खाद प्रति हैक्टर खेत में ढेरियों में डाले दें और एक–दो वर्शा के बाद खेत में फैलाकर जुताई करें। असिंचित क्षेत्रों में ऊपर बताये गये उर्वरकों की आधी मात्रा ही बुवाई के समय काम में लेवें। जिन क्षेत्रों में बढ़वार (वानस्पतिक वृद्धि) के दौरान वर्शा हो जावे तो 10 किलो बीघा के हिसाब से यूरिया का भुरकाव अधिक उत्पादन हेतु कर सकते हैं। जिन मृदाओं में जस्ते की कमी पायी जावे वहां पर 25 किलो जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर बुवाई के समय भूमि में डालें। इससे उपज में वृद्धि होगी।

फसल चक्र : फसलों को खेत में बदल–बदल कर उगाने से पोशक तत्वों का पुनर्चक्रण–रोग कीटों व खरपतवारों का मरण होता है। दलहनी, अदलहनी फसल, घास–पशु के चक्र से भूमि की उर्वरकता में वृद्धि होगी साथ ही कीड़े रोग खरपतवार का भी चक्र टूटने से उनका प्रकोप भी बहुत कम हो जायेगा। अतः प्रतिवर्श एक दलहनी फसल अव य ली जायें। तीन वर्श में कम से कम एक बार हरी खाद वाली फसल जरूर उगानी चाहिए। जमीन को आराम मिलने से सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होगी। उपयुक्त फसल चक्र निम्नलिखित है।

मक्का–सरसों,मूंग/उड़द–सरसों, ज्वार, चंवला/लाबिया–सरसों, हरी खाद (ढेंचा/लोबिया/सनई)–सरसों, पडेती–सरसों, उपरोक्त फसल चक्र को अपनाकर सरसों से अधिक उपज ली जा सकती है।

सिंचाई प्रबंधन : प्रथम सिंचाई बुवाई के 35–40 दिन बाद फूल आने से पहले तथा अधिक बीजोत्पादन के लिये दूसरी सिंचाई 70–80 दिन बाद करें। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो बुवाई के 45–50 दिन बाद करनी चाहिये। अधिक वर्शा वालो क्षेत्रों में समुचित जल निकास की व्यवस्था करना अति आवश्यक है। सिंचाई पट्टीदार या क्यारी विधि से करना चाहियें।

खरपतवार प्रंबधन : सरसों में मुख्यतयाः रबी के मौसम में उगने वाले खरपतवार जैसे बथुआ, कृश्णनील, सतंगंठिया, प्याजी, हिरनखुरी व सैजी आदि विद्यमान हो सकते है। प्याजी की रोकथाम हेतु फलूक्लोरेलिन 0.75–1.0 किलो सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई पूर्व भूमि में मिलावें। अन्य शकनाशी जैसे पेन्डीमेथालिन 750 ग्राम सक्रिय तत्व या ऑक्सीडाईजिन 500 ग्राम प्रति हेक्टेयर फसल उगने से पहले 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। पौधों की संख्या अधिक हो तो बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई–गुड़ाई कर खरपतवार निकाले एवं निराई के साथ छूंटाई कर घने पौधे को निकालकर पौधों के बीच की दूरी 10–15 से.मी. कर देवें। सिंचाई के बाद गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ फसल की बढ़वार अच्छी होगी तथा डस्ट मल्व बनाकर नमी संरक्षण करके सरसों से अधिक पैदावार ली जा सकती है।

जैव नियामकों व सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग : सरसों की खड़ी फसल में थायोयूरिया 0.1 प्रतिशत के दो छिड़काव प्रथम 45 दिन व द्वितीय 60 दिन पर करने से उपज में वृद्धि होती है। 1.75 ग्राम एसीटिक एसिड़ को 100 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 75–80 दिन पर छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है। खड़ी फसल में जिंक की कमी दिखई देने पर 50 दिन की फसल पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.25 प्रतिशत बुझे हुये चूने का घोल बनाकर छिड़काव करें।

सिमित सिंचाई जल उपलब्धता की स्थिति में सरसों में हाइड्रोजेल 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय फॉस्फेटिक उर्वरक की संस्तुत मात्रा के साथ मृदा में प्रयोग करने से तथा सरसों की

खड़ी फसल में सैलिसिलिक अम्ल 200 पीपीएम (0.2 ग्राम/लीटर) का एक पणीर्य छिड़काव फूल बनने की अवस्था पर करने से स्थायी टीकाऊ बीज उपज, जल उपयोग दक्षता, शुद्ध आय व लाभ प्राप्त करने के लिए फायदेमंद/उपयुक्त पाया गया है। यदि सम्भव हो तो सैलिसिलिक अम्ल 200 पीपीएम का दूसरा पणीर्य छिड़काव सरसों में फलियाँ बनने की अवस्था पर करें/कर सकते है।

अन्त : फसलें : बारानी क्षेत्रों में सरसों व चना की अन्तः फसल 2:2, 1:4, 7:2, 14:2/4 के अनुपात में 30 से.मी. की दूरी पर लाइनों में बोना उपयुक्त पाया गया है। इससे चना फसल को पाला नहीं मारता है तथा सरसों की फसल में दवा भी आसानी से छिड़की जा सकती है।

पाले से बचाव : सरसों को पाले से बचाने के लिये 0.1 प्रतिशत गंधक के अम्ल का खड़ी फसल पर पाला पड़ने की संभावना होने पर एक दो बार छिड़काव करें। लगभग 0.1 प्रतिशत थायोयूरिया एवं 0.4 पी.पी.एम. ब्रासीनोंस्टेरोराइड का छिड़काव भी किसी तरह के जलवायु दबाव से बचने के लिये प्रयोग कर सकते है।

कीट प्रबंधन

(1) पेन्टेड बग : इसे चितकबरा या दागीला कीडे के नाम से भी जाना जाता है। इस कीट की निम्फ एवं प्रौढ़ दोनों ही अवस्थाऐं पौधे के कोमल भागों से रस चूस कर नुकसान पहुंचाते है। फसल की छोटी अवस्था में इसका अधिक प्रकोप होने पर समूची फसल नष्ट हो सकती है।

(2) आरामक्खी :– इसकी लटे पत्तियों में छेद करके खाना प्रारम्भ करती है तथा नई पत्तियों को खाना ज्यादा पसंद करती है। ज्यादा आक्रमण होने पर पौधा पूर्णतया पत्ती रहित कंकाल रह जाता है।

(3) माहूँ/चेंपा :– इस कीट के नीम्फ तथा प्रौढ़ दोनों अवस्थाऐं नुकसान पहुंचाती है। इनके चूशक चोंद होती है। जिसे पौधे कोमल भागों, पुश्पक्रम आदि में चोंच गढ़ाकर निरन्तर रस चूसते रहते है, तथा पौधे पर स्थायी रूप से झुण्ड़ों में चिपके रहते है। माहूँ के प्रकोप से सरसों की गुणवता एवं मात्रा दोनों पर व्यापक असर पड़ता है।

नियंत्रण : (1) पेन्टेड बग से बचाव हेतु सरसों की बुआई के 7 से 10 दिन के अन्दर मेलाथिऑन डस्ट 5 प्रतिशत या क्यूनालफोस 1.5 प्रतिशत या कार्बरिल 5 प्रतिशत पाउडर 25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकाव करें।

(2) आरा मक्खी के नियंत्रण हेतु उपरोक्त डस्ट के आलावा पानी उपलब्ध होने पर क्यूनालफोस 25 ई.सी. का 1.25 ली. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(3) माहूं नियंत्रण हेतु यथासम्भव 15 अक्टूबर से पूर्व बुआई करें। मेलाथिऑन डस्ट 5 प्रतिशत 20–25 किलोग्राम भुरकें या पानी की सुविधा वाले स्थानों में डाईमिथोएट 875 मि.ली. या एसीफेट 75 एस. पी. का 700 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव प्रकोप दिखाई देते ही करें आवश्यकता हो तो छिड़काव पुनः दोहराहें।

व्याधि प्रबंधन

(1) झुलसा : पत्तियों पर छोटे गोल भूरे रंग के धब्बे दिखई देते है। ये धब्बे धीरे–धीरे बढ़कर आपस में मिल जाते है। अधिक संक्रमण होने पर फलियां काले रंग की हो जाती है। सड़ भी सकती है। बीज सिकुड़े हुए एवं छोटे रह जाते है।

(2) सफेद रोली : पत्तियों, वृत्तों पर उभरे हुए चमकीले सफेद अनियमित आकार के स्फोट अथवा फफोले दिखाई देते है। ये फफोले धीरे–धीरे आकर में बड़े होकर आपस में मिल जाते है। सक्रंमण की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियों की बाहय त्वचा फट जाती है, पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है।

नियंत्रण : (1) बुआई पूर्व सरसों को मेंकोजेब 3 ग्राम अथवा एप्रोन 6 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित करें।

(2) रोग के लक्षण दिखई देते ही मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति ली. अथवा ब्लाईटोक्स का 0.03–0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

(3) तना सड़न : इस रोग के लक्षण फसल बुवाई के 60–65 दिन बाद दिखाई देते है। रोग ग्रस्त पौधे पर भूमि की सतह के पास बडे बडे सफेद चकते बन जाते है। धब्बे वाले स्थान को चीर कर देखने पर रोग कारक फफूंद के काले रंग के बड़े–बड़े बीजाक दिखाई देते हैं। रोग ग्रस्त पौधा 7–10 दिन में सूख जाता है।

नियंत्रण : (1) रोगग्रस्त खेतों में लगातार सरसों लेने पर प्रकोप बढ़ता है। अतः फसल चक्र अवश्य अपनावें।

(2) बुवाई पूर्व, उपरोक्तानुसार बीज उपचार करें। फसल 60–65 दिन की होने पर 2 ग्राम प्रति ली. कार्बेन्डाजिम अथवा रिडोमिल 1 ग्राम प्रति ली. घोल बनाकर छिडकें।

(4) छाछया : रोग दिखाई देते ही प्रति हैक्टर 20 किलो गन्धक चूर्ण भुरकें या 2.5 किलो घुलनशील गन्धक का 0.3–0.4 प्रतिशत घोल या 750 मि.ली. केराथीन एल का 0.1 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़कें।

फसल की कटाई एवं गहाई : जब फलियां पीली या भूरी पड़ने लगे तथा झड़ने लगे तो फसल काट ले अन्यथा कटाई में देर होने पर दाने खेत में झड़ जाने की आशंका रहती है। पौधों के पूर्ण रूप से सूखने के पश्चात् बीजों को पौधों से थ्रेसर मशीन द्वारा अलग कर लिया जाता है। फिर बीजों को भली भांति सुखाकर एकदम साफ बोरों में भरकर हवादार स्वच्छ गोदामों में भण्डारित कर लेवें। सरसों की कटाई यथासम्भव फिजियोलोजिकल परिपक्व अवस्था पर करें इस अवस्था में दाने झड़ने की आंशका एवं नुकसान नहीं होगा।

उपज : सामान्यतयाः उन्नत किस्म का बीज व उचित सस्य क्रियाऐं तथा पौध संरक्षण अपनाने पर 25–30 क्विं. प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

रबी की प्रमुख फसलों में बीजोपचार द्वारा पौध संरक्षण

रामजीलाल मीना, राजेश, आकाश तंवर एवं भगवान सिंह
कृषि महाविद्यालय, झिलाई (निवाई) टोंक

रबी की फसलों में सम्पूर्ण फसलावधि में कीट व रोगों का प्रकोप रहता है। अतः किसान उन्नत कृषि विधियाँ एवं कीट व्याधि प्रबंधन अपनाकर तथा उचित मात्रा में रसायनों का समयानुकूल प्रयोग करके अपने उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता में बढोतरी कर सकता है।

गेहुँ एवं जौ : गेहुँ रबी की प्रमुख खाद्यान्न फसल है। राजस्थान देश के प्रमुख गेहुँ उत्पादक राज्य है। राजस्थान में गेहुं की फसल में अनावृत कण्डवा, पत्ती कण्डवा, ईयर कोकल व टुण्डु रोगों का प्रकोप अधिक होता है।

ईयर कोकल व टुण्डु रोगों से बचाव के लिए रोगग्रस्त बीज को 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोकर नीचे बचे स्वस्थ बीज को अलग छांटकर साफ पानी में धोंये और छाया में सुखाकर बोने के काम में लेंवे।

बीजोढ रोगों के बचाव के लिए 2 ग्राम थाइरम या 2.5 ग्राम मेन्कोजेब प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई के काम में लेंवे।

दीमक नियन्त्रण हेतु 450 मिलीलिटर क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर 100 किलो बीज पर समान रूप से छिडककर उपचारित करें या फिप्रोनिल 5 एफ.एस. 6.0 मिलीलिटर प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर छाया में सुखाकर बुवाई करें। बीजोपचार के बाद 2 घण्टे में बुवाई अवश्य कर दें अन्यथा अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

गेहुँ का झुलसा रोग में बीज के द्वारा फैलने वाले संक्रमण को रोकने के लिए विटावेक्स 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिये।

गेहुँ का अनावृत व पत्ती कण्डवा रोग का नियन्त्रण : अनावृत्त कण्डवा एवं पत्ती कण्डवा रोग के नियन्त्रण हेतु कार्बोक्सिन या कारबेण्डाजिम 2.0 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीज को उपचारित करें या टेबुकोनाजोल (रेक्सिल 2 डी एस) 1.25 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचारित करें अथवा ग्लायोक्लेडियम विरेन्स 4.0 ग्राम + विटावेक्स 1.25 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें।

मोल्या रोग का नियन्त्रण : रोग की रोकथाम हेतु एक या दो साल तक गेहुँ नही बोयें तथा इसके स्थान पर जौ की मोल्या रोधक किस्में आर.डी. 2035, आर.डी. 2508, आर.डी. 2624, राज मोल्या रैंधक 1 किस्में काम में लें। फसल चक्र में चना सरसों, प्याज, सूरजमुखी, आलू या गाजर की फसलें बोयें। रोग की रोकथाम हेतु मई जून में खेत की दो बार गहरी जुताई करें। जिन खेतों में रोग का प्रकोप अधिक हो वहाँ खेतों में बुवाई से पहले 45 किलो कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण प्रति हैक्टर की दर से 90 किलो यूरिया के साथ भूमि में उरकर बुवाई करें। अगर बुवाई के समय यह उपचार नही किया तो शीर्ष जड जमने के समय पहली सिंचाई के साथ यह रसायन देवें। 5.0 क्विंटल/हैक्टर की दर से पिसी हुई नीम की खली खेत में डालने से भी इस रोग से बचा जा सकता है।

करनाल बंट : यह रोग बालियों में दाना बनते समय होता है तथा दाना निकालने पर ही पता चलता है। दानों का कुछ भाग काला पड जाता है तथा फोडने पर काला पाउडर निकलता है। दानों को फोडने पर वदबू का आभास होता है, यह बदबू संक्रमित दानों में ट्राईमिथाइल रसायन की वजह से आती है।

रोग की रोकथाम फसल की सही समय (नवम्बर के तीसरे सप्ताह) पर बुवाई करें। बीज को 2.5 ग्राम वीटावेक्स प्रति किलो की दर से उपचारित करके बोने से बीज द्वारा फैलने वाला संक्रमण नहीं होता है।

सरसों

तुलासिता व सफेद रोली : यह रोग पौधे के वृद्धि से लेकर फलन तक सभी भागों पर पाया जाता है। यह रोग मुख्यतया पत्ति झुलसा रोग के तुरन्त बाद शुरू होता है। इस रोग में 'लोकल व सिसटेमिक' दोनो तरह के लक्षण पाये जाते हैं। लोकल संक्रमण में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग के फफोले दिखाई देते हैं जो बाद में फैलकर मिल जाते हैं। सिसटेमिक संक्रमण में पौधे का तना व फलन वाले भाग फूल जाते हैं। नमी वाले मौसम में सफेद रोली व तुलासिता मिलकर स्टेग हैड संरचना बनाते हैं। इस रोग से बचने के लिए सरसों की बुआई 15 सितम्बर से 15 अक्टुबर के मध्य कर देनी चाहिये। सरसों के बीज को बुआई से पहले एप्रोन 35 एस.डी. 6.0 ग्राम या थायराम 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये।

सरसों का तना गलन रोग : यह रोग मिटटी में मिले हुए या बीज में मिले हुए स्कलेरोसिया या दुसरे रोगग्रस्त पौधों में उपस्थित कवकजाल या स्कलेरोसिया से फैलता है। तने पर जलासिक्त धब्बे जोकि बाद में रूई जैसी वृद्धि लिये दिखाई देते हैं। दूर से देखने पर पौधे तने के आधार पर सफेदी लिये दिखाई देते हैं। समय से पहले पौधे पके हुए और सिकुडे, झुलसे एवं सूखे हुए दिखाई देते हैं।

इस रोग से बचने के लिए सरसों का हमेशा स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज ही बुआई के काम लेना चाहिये। गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिये। अपरपोषी फसलों का फसल चक्र अपनाना चाहिये जैसाकि गेहुँ, जौ। 6.0 ग्राम ट्राइकोडरमा प्रतिकिलो बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। इसके साथ ही 2.5 किलो ट्राइकोड़रमा 50 किलो गोबर की खाद में मिलाकर बुआई से पहले खेत में मिलायें।

पेन्टेड बग : अंकुरण के 7–10 दिन में ये कीट अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। वयस्क कीट (बग) के शरीर पर काले व नारंगी रंग के धब्बे होने के कारण इसे पेन्टेड बग कहते हैं। इसका प्रकोप सितम्बर के महिने से ही शुरू हो जाता है। यह सरसों का काफी हानिकारक कीट है। वयस्क एवं निम्फ नये पौधों के सभी भागों से रस चूसकर कमजोर कर देते हैं जिससे मुरझा व कुम्लाहकर सूख जाते हैं। वयस्क बग एक प्रकार का पदार्थ छोडते हैं जिससे फलियाँ गल जाती हैं। गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिये।

इस रोग से बचने के लिए सरसों की बुआई 15 सितम्बर से 15 अक्टुबर के मध्य कर देनी चाहिये। बुआई के चौथे सप्ताह में सिंचाई करने से बग के प्रकोप में कमी देखी गई है। पेन्टेड बग के नियन्त्रण के लिए 8.0 मिलीलीटर इमीडाक्लोर्पिड 600 एफ.एस. का प्रतिकिलो बीज की दर से उपचारित करकें बुआई करें।

मोयला : मोयला की रोकथाम के लिए सरसों की बुआई 15 सितम्बर से 15 अक्टुबर के मध्य कर देनी चाहिये। मोयला के नियन्त्रण के लिए 8.0 मिलीलीटर इमीडाक्लोरपिड 600 एफ.एस. का प्रतिकिलो बीज की दर से उपचारित करकें बुआई करें।

चना

दीमक: दीमक का प्रकोप बारानी अवस्था, हल्की भूमी एवं असिंचित फसल में अधिक होता है। इसके लिए बुआई से पहले क्लोरोपाइरिफास 20 ई.सी. या फिप्रोनिल 5 एस.सी. 10 मिलीलीटर प्रतिकिलो बीज को उपचारित करके बोना चाहिये।

कटवर्म : इसके लिए फसल की अगेती बुआई करें तथा आखरी जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत 25 किलो चूर्ण का भुरकाव करें।

चने का उक्टा रोग एंव सूखा जड़ गलन : राईजोकटोनिया बटाटीकोला जनित रोग के नियन्त्रण हेतु कार्बेण्डाजिम 1.0 व थायराम 2.5 ग्राम प्रति कलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुआई करनी चाहिये। ट्राइकोडरमा 6.0 ग्राम प्रतिकिलो बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। इसके साथ ही 2.5 किलो ट्राइकोडरमा 50 किलो गोबर की खाद में मिलाकर 15 दिन तक छाया में रखने के बाद बुआई से पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में मिलायें।

रबी की फसलों में सम्पूर्ण फसलावधि में कीट व रोगों का प्रकोप रहता है। अतः किसान उन्नत कृषि विधियाँ एवं कीट व्याधि प्रबंधन अपनाकर तथा उचित मात्रा में रसायनों का समयानुकूल प्रयोग करके अपने उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता में बढोतरी कर सकता है।

चने के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका प्रबंधन

सरिता, रूप सिंह, आर. के. बैरवा एवं अरविंद नागर
कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा

विश्व में भारत चने का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन दोनों ही दृष्टि से दलहनी फसलों में चने का मुख्य स्थान हैं। समस्त उत्तर, मध्य व दक्षिणी भारतीय राज्यों में चना रबी फसल के रूप में उगाया जाता है। चना उत्पादन की उन्नत तकनीक, उन्नतशील प्रजातियों कीटों एवं रोगों के उचित प्रबंधन से किसान चने की उपज को बढ़ा सकते हैं।

चने के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

चने का फली छेदक : इस कीट की मादा पत्तियों की निचली सतह पर हल्के पीले रंग के खरबूजे की धारियों वाले अंडे देती है जिनसे चमकीले हरे रंग की सुंडियां निकलती है। शुरू में ये सुंडियां चने की पत्तियों, कलियाँ और फूलों को खाती है बाद में ये विकसित हो रही चने की फलियों के अंदर घुस कर दानों को खा जाती है। ये फलियाँ खोखली होने के कारण पिली पड़ कर सूख जाती है जिससे पैदावार पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

प्रबंधन

- खेत में 20 फेरोमोन ट्रेप प्रति हेक्टर की दर से लगायें
- प्रारम्भिक अवस्था में एन.पी.वी. 250 एल.ई. प्रति हेक्टर की दर से 15–20 दिनों के अन्तराल से तीन बार प्रयोग करें
- खड़ी फसल में 50 प्रतिशत फूल आने पर बीटी 1.5 लीटर या नीम का तेल 700 मी.ली. का प्रति हेक्टर की दर से छिडकाव करें
- खड़ी फसल में छिड़काव हेतु इमामेक्टिन बैन्जोएट 5 SG 200 ग्राम/है. की दर से छिड़काव करें।

प्रबंधन

- क्युनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलुग्राम प्रति हेक्टर की दर से आखरी जुताई से पहले भूमि में मिलाएं।
- यदि भूमि उपचार नहीं कर पायें तो कटवर्म का प्रभाव दिखाई देते ही शाम के समय क्युनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से भुरकाव करके प्रकोप से बचा जा सकता है।
- खेत में जगह–जगह पर सुखी घास के छोटे – छोटे ढेर को रख देने से दिन में कटुआ कीट की सुंडियां घास के निचे छुप जाती है जिन्हें इक्कठा कर नष्ट कर देना चाहिए।

दीमक : इसका प्रकोप बारनी क्षेत्रों में ज्यादा देखा जाता है। ये पौधों के तनो के सहारे सुरंग बनाकर जड़ो तक पहुँच जाती है और जड़ों को नुकसान पहुंचती है जिससे पौधें मुरझाना शुरू हो जाते है और आखिर में सूख जाते है।

रोकथाम

- क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. की 1 लीटर मात्रा प्रति है. 100 किलोग्राम बीज की दर से शोधन करें।
- खड़ी फसल में दीमक लगने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 4 लीटर/है. की दर से सिंचाई के पानी के साथ देवें।

चने के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

उखटा रोग (विल्ट) : इस रोग का प्रकोप देश के चना उगाने वाले सभी क्षेत्रों में होता है। यह एक कवक फ्यूजेरियम ऑक्सिस्पोरम द्वारा होता है। यहे पौधें को किसी भी अवस्था में संक्रमित कर सकता है, परन्तु सामान्यतः बुवाई के 2–4 सप्ताह बाद या फिर फसल की फूल व फली लगने वाली अवस्था में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस रोग का प्रभाव खेत में छोटे– छोटे टुकड़ों में दिखाई देता है। प्रारंम्भ में पौधें की उपरी पत्तियाँ मुरझा जाती हैं व धीरे धीरे पूरा पौधा सूखकर मर जाता है। ऐसे पौधें के तने को जड़ के पास से चीर कर देखने पर वाहक उत्तको में कवक जाल धागेनुमा काले रंग की सरंचना के रूप में दिखाई देता हैं।

प्रबंधन

- चने की एकल फसल न लेकर फसल चक्र अपनाएं।
- रोगरोधी किस्मों आर.एस.जी.–888 व आर.एस.जी.–896 की बुवाई करें।

- चने के बीजों का बुवाई से पहले कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम या ट्राईकोडर्मा पाउडर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से बीजोपचार करें।
- ट्राइकोडर्मा 4 किलोग्राम को 100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई से पहले प्रति है. की दर से खेत में मिलावें।
- खड़ी फसल मे रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. के 0.2 प्रतिशत घोल का पौधों के जड़ क्षेत्र में छिडकाव करें।

चने का अल्टरनेरिया झुलसा रोग: यह बीमारी कवक के कारण होती है। इसके कारण पौधें की जड़ों को छोड़कर तने पत्तियों एवं फलियो पर छोटे गोल तथा भूरे रंग के धब्बे बन जाते है जो बाद में आपस में मिलकर बड़े हो जाते है और पत्तियां सूख कर झड़ने लगती है, जिससे पौधा कमजोर हो जाता है व फलियाँ कम लगती है।

प्रबंधन

- जहां इस रेाग का प्रकोप अधिक हो उन क्षेत्रों में रोग रोधी किस्म गणगोर की बुवाई करें।
- बीजों को कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू. पी. 2 ग्राम प्रति कीलोग्राम की दर से बीजोपचार करें।
- खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब 75 डब्ल्यू. पी. 2 ग्राम या कुपर ऑक्सिक्लोराईड 50 डब्ल्यू. पी. 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिडकाव करें।

ऐस्कोकाईटा अंगमारी रोग: यह बीज एवं भूमि जनित रोग है इस रोग के लक्षण फरवरी–मार्च में दिखाती देते है। ग्रसित पौधे के तने, पत्तियों व फलियो पर छोटे गोल व भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते है।

प्रबंधन

- फसल चक्र अपनाएं।
- गर्मियों में गहरी जुताई करें व ग्रसित फसल अवशेष तथा अन्य घास को नष्ट कर दें।

- कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत एवं थाईरम 50 प्रतिशत 1:2 के अनुपात में 3 ग्राम की दर से प्रति किलोग्राम बीज दर से बीजोपचार करें।
- चने में मेन्कोजेब या क्लोरोथेलोनिल 2–3 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बना कर छिड़काव करने से इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

शुष्क मूल विगलन रोग: यह एक भूमि जनित रोग है। पोधौं में इसका संक्रमण राईजेक्टेनिया बटाटिकोला नामक कवक से फैलता है। मिट्टी में नमी की कमी और वायु का तापमान 30° सेंटीग्रेड से अधिक होने पर इस बीमारी का गंभीर प्रकोप होता है। सामान्यतः इस बीमारी का प्रकोप पोधौं में फूल आने और फलियाँ बनते समय होता है। रोग से प्रभावित पोधौं की जड़ें अविकसित एवं काली होकर सड़ने लगती है तथा आसानी से टूट जाती है।

जड़ों में दिखाई देने वाले भाग और तनों के आंतरिक हिस्सो पर छोटे काले रंग की फुफुन्दी के बीजाणु भी देखे जा सकते हैं। संक्रमण अधिक होने पर पौधे का रंग भूरा, जड़ें काली भंगुर हो जाती है, तथा अंत में पूरा पौधा सूख जाता है।

प्रबंधन

- फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- चने के बीज को फफुन्दनाशक द्वारा बीजोपचार करके बुवाई करने से शुरूआती अवस्था में इस बिमारी के प्रभाव को रोका जा सकता है।
- चने की बुवाई समय पर करें क्योकि फूल आने के उपरान्त सूखा पड़ने पर अधिक गर्मी से यह रोग फैलता है।

रबी फसलों में खरपतवार प्रबन्धन

उदिति धाकड़, शालिनी मीणा, के.एम.शर्मा एवं एस.एल. यादव
कृषि महाविद्यालय, कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

खरपतवार पौधों की ऐसी प्रजातियां है जो अवांछित रूप से उगती है जो फसल के लिए हानिकारक होती है। यह इतनी प्रचुर मात्रा में उगते है जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दूसरे पौधों को दबाकर विभिन्न प्रकार से हानि पहुंचाते है। अतः फसल उत्पादन हेतु फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना अति आवश्यक है, कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये उन्नतशील किस्मों, उचित खाद–उर्वरक व सिंचाई के साथ साथ खरपतवार प्रबंधन भी अति आवश्यक है अन्यथा फसलोत्पादन के लिये अपनाई जाने वाली उन्नत तकनीकी का पूरा लाभ नहीं मिल पाता।

खरपतवारों से हानियां : यह प्रमाणित है कि खरपतवारों की उपस्थित से फसल की उपज कम हो जाती है। किसान जो अपनी पूर्ण शक्ति व साधन फसल की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये लगाता है, ये अनैच्छिक खरपतवार इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने देते हैं। खरपतवार फसल से पोषक तत्व, नमी, प्रकाश, स्थान व वायु आदि के लिये प्रतिस्पर्धा करके फसल की वृद्धि उपज एवं गुणों में कमी कर देते है। खरपतवारों से हुई हानि किसी अन्य कारणों जैसे कीट, रोग व्याधि आदि से हुई हानि की अपेक्षा अधिक होती है। एक अनुमान के आधार पर हमारे देश में विभिन्न व्याधियों के प्रतिवर्ष करोडों रूपये की हानि होती है जिसका लगभग एक तिहाई भाग खरपतवारों द्वारा होता है। आमतौर पर विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 15 से 60 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। खरपतवार फसलों के लिये भूमि में निहित पोषक तत्व एवं नमी का एक बड़ा हिस्सा शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश, वायु व नमी से भी वंचित रखतें हैं। फल स्वरूप पौधों की विकास की गति धीमी पड़ जाती है और उत्पादन का स्तर गिर जाता है। खरपतवारों से परोक्ष रूप से भी बहुत सी हानियां होती है। जैसे फसल के बीजों में गुणवत्ता में कमी, फसल में रोग कीटों को शरण देना, दुधारू पशुओं से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थो की गुणवत्ता में कमी होना, फसल उत्पादन लागत मूल्यों में वृद्धि आदि। अतः खरपतवारों को फसल का सबसे बड़ा शत्रु समझा जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन्नत किस्म के बीज, उपयुक्त उर्वरक, सिंचाई एवं फसल सुरक्षा के उपाय जैसे आधुनिक तरीकों को अपनाकर भी कृषक फसलों की भरपूर पैदावार नहीं ले पाते हैं जिसका मुख्य कारण है – खरपतवारों का सही समय पर एवं उचित विधि द्वारा नियंत्रण नहीं कर पाना। अतः विभिन्न विधियों द्वारा खरपतवारों को नियंत्रण कर रबी फसलों की अधिक उपज एवं लाभ लिया जा सकता है।

रबी फसल में बुवाई के बाद खरपतवारों का विशेष रूप से प्रथम सिंचाई के उपरान्त ज्यादा प्रकोप रहता है। खरपतवारों की सघनता शस्य–जलवायुवीय स्थितियों एवं प्रबन्ध के स्तर पर निर्भर करती है। विभिन्न शोध परिणामों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अनियंत्रित खरपतवारों के कारण प्रति पौधे प्ररोहों, दानों का भार, प्रति बाली दाने एवं उपज कम हो जाती है। खरपतवार शुष्क पदार्थ एवं उपज प्रति पौधे में नकारात्मक सम्बन्ध पाया गया है। खरपतवारों के प्रभाव का क्रान्तिक समय बोने के लगभग 4–6 सप्ताह तक है, यदि इस समय में फसल को खरपतवारों से मुक्त रखा जाए जो अधिक उपज व लाभ मिलता है। विभिन्न शोध परिणामों में यह पाया गया है कि खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों एवं पानी का ह्रास किया जाता है जो तालिका–1 में दर्शाया गया है।

खरपतवारों का नियंत्रण कब करें : प्रायः यह देखा गया है कि कीट व रोग व्याधि लगने पर उनके निदान के लिये तुरंत ध्यान दिया जाता है। लेकिन खरपतवारों के नियंत्रण हेतु ध्यान नहीं दिया जाता है और इनकों जब तक बढ़ने देता है जब तक कि हाथ से पकडकर उखाडने योग्य न हो जायें।

तालिका–1 गेहूँ की फसल में विभिन्न खरपतवारों द्वारा पानी एवं पोषक तत्वों का ह्रास

	वाष्पोत्सर्जन गुणांक (मिलीमीटर पानी ह्रास प्रति ग्राम शुष्क पदार्थ)	पोषक तत्व ह्रास (कि.ग्रा./हेक्टेयर)		
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
गेहूँ	479	59.30	12.80	46.80
खरपतवार	336–1402	21.70	2.90	28.20
		पोषक तत्व मात्रा (%)		
बथुआ	550	2.59	0.37	4.34
जंगली चौलाई	336	3.16	0.06	4.51
धमासा	1108	–	–	–
फुलनी	1402	–	–	–
सत्यनाशी	–	1.36	1.36	1.33
हिरनखुरी	–	1.01	1.01	2.00
मोथा	–	2.16	0.26	2.73
सेंजी	–	1.53	1.53	1.85
बैंगनी कटेली	–	2.56	1.63	2.12
दूब घास	–	1.72	0.25	1.75

कहीं–कहीं तो किसान खरपतवारों कों पशुओं के चारे के रूप में उपयोग करते हैं और खरपतवारेां को फसल नुकसान कर चुके होते हैं। फसलों की प्रारंभिक अवस्था खरपतवारों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। जिस अवस्था में यह प्रतिस्पर्धा सर्वाधिक होती है उसे ''क्रान्तिक अवस्था'' कहते हैं। यदि इस अवस्था पर खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया जाए तो उसकी क्षति पूर्ति बाद में नहीं की जा सकती है। प्रमुख फसलों में खरपतवार के कारण उपज में कमी तथा क्रान्तिक अवस्था सारणी–2 में दी गई है।

रोकथाम की जा सकती है जैसे–एक वर्ष गेंहूँ की फसल के बाद दूसरी वर्ष सरसों/चना लगाना। साथ ही जहाँ सम्भव हो बहु फसली एवं अन्तर्वतीय फसलों को प्राथमिकता के तौर पर लगायें। अंतः वर्ती फसलों में हुये शोध परिणाम यह दर्शाते है कि एकल फसल की तुलना में अंतवर्ती फसलों में खरपतवारों का प्रकोप कम होता हैं। जैसे–सरसों की कतारों के मध्य चना, मसूर व मटर, गेहूँ के साथ चना/सरसों, चने के साथ अलसी की अंतःवर्ती फसलों की बुवाई करके खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है।

तालिका–2 रबी फसलों में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय व उपज में कमी।

क्र.सं	फसल	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय (बुआई के बाद दिन)	उपज में कमी % में
1.	गेंहू	30–45	25–45
2.	जौ	30–45	10–35
3.	चना	30–60	15–25
4.	मटर	30–45	20–30
5.	मसूर	30–60	20–30
6.	सरसों	15–40	15–30
7.	अलसी	20–40	30–40
8.	धनिया	25–50	30–60
9.	कुसुम	15–45	35–60
10.	सूरजमुखी	30–45	30–50
11.	गन्ना	15–60	20–30

खरपतवार नियंत्रण की विधियां : खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण किया जाये। खरपतवारों के नियंत्रण में ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि खरपतवारों का सही समय व उचित विधियों द्वारा नियत्रंण किया जाये।

यांत्रिक विधियों एवं शस्य क्रियाओं द्वारा खरपतवार नियंत्रण : खरीफ की फसल कटने के उपरान्त, खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके पश्चात् 3–4 जुताई आर–पार डिस्क हैरो या कल्टीवेटर से करें। पलेवा करने के पश्चात् उगने वाले खरपतवारों को जुताई द्वारा नष्ट कर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। गेहूँ की बुवाई के बाद यदि खेत में खरपतवार दिखाई दे तो ''हैड हो'', खुरपी या कुदाली से निराई–गुड़ाई करना अच्छा रहता है। निराई–गुड़ाई हमेशा, प्रथम सिंचाई के बाद 10–12 दिन के अन्दर कम से कम एक बार अवश्य करें इससे खरपतवारों द्वारा पानी का अवशोषण व वाष्पीकरण नहीं हो पाएगा और खेत में ज्यादा दिनों तक नमी बनी रहेगी जो फसल के उपयोग में आयेगी, बाद में भी आवश्यकतानुसार समय–समय पर निराई–गुड़ाई अवश्य करें, इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ ही, मृदा में वायु संचार बढ़ने से फसल की वृद्धि एवं उपज में बढ़ोतरी होती है साथ ही नमी संरक्षण भी होता है।

फसल चक्र/अन्तर्वतीय फसलें : क्षेत्र विशेष में एक ही तरह से फसल चक्र को अपनाने से विशेष प्रकार के खरपतवारों की संख्या बढ़ती है, अतः फसल चक्र को बदलने तथा इसमें क्षेत्र की सिफारिश के अनुसार विपरीत स्वभाव वाली फसलों के समावेश से खरपतवारों की काफी हद तक

मल्चिंग या पलवार: फसलों की कतारों के बीच खाली स्थान पर भूसा, धान का पुआल तथा उखाडे गये कचरा से ढक देना चाहिये। इस प्रकार खरपतवारों को वायु व प्रकाश नहीं मिलता है जिससे वह मर जाते है। शुष्क खेती वाले क्षेत्रों के लिये यह सर्वोत्तम विधि है क्योंकि इस विधि से खरपतवारों की वृद्धि पर विपरीत असर ही नहीं पडता वरन् उपलब्ध नमी का भी संरक्षण होता है। यह विधि कतारों में बोई गई फसलों जैसे सरसों, चना, अलसी एवं रबी मक्का आदि में आसानी से अपनाई जा सकती है। फसल की दो लाइनों के बीच खाली पड़े स्थानों को पुआल, पत्तियों से ढकने से उस स्थान पर खरपतवार नहीं उग पाते हैं।

यांत्रिक विधियाँ : इन विधियों में भूपरिष्करण (गर्मी की जुताई) एवं मृदा उष्मीकरण, हाथ द्वारा निंराई–गुड़ाई द्वारा खरपतवारों की कटाई, कोल्पा या डोरा आदि को चलाकर खरपतवारों को नियंत्रित किया जाता है। मशीन, पशुधन तथा मानव शक्ति चलित उन्नत निंराई–गुड़ाई यंत्रों तथा औजारों द्वारा खरपतवार नियंत्रण की यांत्रिक विधि है इसके अलावा खींचकर चलाये जाने वाले औजारों में पुलटाइप वीडर, भ्री टाइन हैण्डकल्टीवेटर (तीन फालोंबाला निंदाई यंत्र) व्हीलब्लेड हैण्ड हो, आगे पीछे खींचकर चलाए जाने वाले निंदाई फसलों में हाथ से एक या दो निंदाई करें।

हाथ द्वारा निराई–गुडाई: यदि पर्याप्त श्रमिक उपलब्ध हो तो, यह खरपतवार नियंत्रण की सर्वोत्तम विधि है। फसलों की प्रारंभिक अवस्था बुवाई के 15–35 दिन के मध्य का समय खरपतवारों से प्रतियोगिता की

दृष्टि से क्रांतिक समय है परिणाम स्वरूप, प्रारंभिक अवस्था में ही फसलों को खरपतवारों से मुक्त करना लाभ दायक होता है। बुवाई के 15–40 दिन के मध्य फसल की क्रांतिक अवस्था के अनुसार खुरपी या कुदाली द्वारा निराई–गुडाई करके खरपतवार निकालना चाहिये। इस विधि से न केवल खरपतवार नष्ट होगें बल्कि मृदा में भी वायु संचार की वृद्धि होगी। इस विधि से कतारों में बोई गई फसलों के खरपतवारों को सफलता पूर्वक नष्ट किया जाता हैं। रबी फसलों में निराई–गुडाई का उपयुक्त समय की विस्तृत जानकारी सारणी–3 में दी गई है।

तालिका 3: विभिन्न रबी फसलों में निराई–गुडाई का उपयुक्त समय

क्र.सं.	फसल का नाम	निराई–गुड़ाई का समय (दिनों में)
1	गेंहू	30–35
2	जौ	30–35
3	चना	25–35
4	मटर	30–35
5	सरसों	20–20
6	अलसी	20–25
7	सूरजमुखी	30–45
8	राजमा	30–35
9	गन्ना	30–40
10	धनियाँ	40–45
11	मसूर	30–35
12	तारामीरा	20–25

खरपतवारनाशी रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण : कई बार समय पर मजदूर न मिलने या ज्यादा खर्चे के कारण, निराई गुड़ाई संभव नहीं हो पाती है और खरपतवारों का अत्यधिक प्रकोप हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में खरपतवारों का खरपतवारनाशी रसायनों से नियंत्रण काफी कारगर एवं कम खर्चीला साबित होता है। विभिन्न प्रकार के खरपतवारनाशक बाजार में उपलब्ध हैं जिनकी मात्रा व उपयोग तालिका–4 में दर्शाया गया है। खरपतवारनाशी रसायन उगते हुए व उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं तथा अन्य को उगने से रोकते हैं। इन खरपतवारों के लिए खेत में थोड़ी नमी हो तो इनका प्रभाव व क्रियाशीलता बढ़ जाती है। खरपतवारनाशक चुनिंदा प्रकार के होते हैं जो विभिन्न खरपतवारों को भिन्न–भिन्न रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट कर देते हैं और यदि सही प्रकार से प्रयोग में लिये जाए जो फसल को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। खरपतवारनाशक, खरपतवारों को शीध्र नष्ट कर देते हैं जिससे उनमें फूल व बीज नहीं बनते है तथा उनका प्रसारण नहीं हो पाता है जिससे अगले वर्ष फसल में खरपतवारों का प्रकोप काफी हद तक कम हो जाता है।

रासायनिक विधियाँ : यह विधि कम परिश्रमलागत एवं समुचित तथा त्वरित प्रभाव के कारण वर्तमान में अधिक लोकप्रिय हो रही है। खरपतवार नियंत्रण में जिन रसायनों का प्रयोग किया जाता है उन्हें खरपतवार नांशी कहते हैं। खरपतवार नाशीदवाओं के बारे में समुचित जानकारी होना अतिआवश्यक है अन्यथा त्रुटिपूर्ण प्रयोग से फसल को हानि के साथ–साथ पर्यावरण भी प्रदूषित होगा। इस विधि का विशेष लाभ यह है कि हाथ से या डोरा चलाकर निंदाई फसल के कुछ बढ़ने पर करते हैं। इन क्रियाओं में खरपतवार जड़ से समाप्त न होकर ऊपर से ही टूट जाते हैं जो बाद में वृद्धि कर जाते हैं साथ ही फसलों की कतारों में उगने वाले नींदा पूरी तरह से नियंत्रित नहीं हो पाता जबकि खंरपतवारनाशी के प्रयोग में यह परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं होती क्योंकि ये रसायन फसल बोने के पूर्व या बोने के बाद एवं अंकुरण पूर्व या खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते हैं। फलस्वरूप नींदा अंकुरण के समय या खड़ी फसल में ही नष्ट हो जाते हैं अतः इस विधि में खरपतवारनाशियों के प्रयोग से पूर्व फसल विशेष के लिये खरपतवारनाशी का नाम मात्रा, प्रयोग का समय एवं विधि का भली प्रकार से ज्ञान होना चाहिए। जिसका विवरण तालिका–4 में दिया गया है। प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने से एवं समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण बडे क्षेत्र में हाथों से मजदूरों द्वारा खरपतवार निकालना कठिन हो जाता है, ऐसी स्थिति में, खरपतवारों का रासायनिक नियंत्रण काफी कारगर साबित होता है।

बुवाई पूर्व खरपतवार नाशक : यह बुवाई से पूर्व या खेत की अंतिम तैयारी के समय छिड़काव कर भूमि में मिला दिए जाते हैं जो कि खरपंतवारों को उगने ही नहीं देते हैं इनका प्रयोग स्प्रेयर, पावर स्प्रेयरव ट्रेक्टर माउन्टेड स्प्रेयर से किया जा सकता है। ध्यान रहे कि ये ज्यादातर उड़नशील प्रकृति के होते है अतः इन्हें छिडकाव के साथ ही या तुरन्त पश्चात् जमीन में अच्छी तरह मिलाना अति आवश्यक है अन्यथा इनका प्रभाव कम हो जाता है। उदाहरण–ट्राइफ्लूरेलिन, फ्लुक्लोरेलिन।

अंकुरण पूर्व एवं बुवाई तुरन्तपश्चात् खरपतवारनाशक : इस प्रकार के खरपतवारनाशक बुवाई के तुरन्त पश्चात् (36–48 घण्टे तक) एवं अंकुरण से पूर्व प्रयोग में लिए जाते हैं। चूंकि खरपतवार फसल से पहले उग आते हैं। अतः यह उगते हुए व उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं तथा अन्य को उगने से रोकते हैं। इन खरपतवारों के लिए यदि खेत में थोड़ी नमी हो तो इनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। यह फसल को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। उदाहरण– पेन्डीमेथालीन

अंकुरण पश्चात् खड़ी फसल में प्रयोग किए जाने वाले खरपतवारनाशक : यह खरपतवार नाशक, फसल उगने के पश्चात् या खड़ी फसलमें छिड़के जाते हैं। यह चुनिंदा प्रकार के होते हैं जो खरपतवारों को विभिन्न रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। कई बार लगातार बारिश होने या अन्य कारणों से बुवाई पूर्व (पीपीआई) व अंकुरण पूर्व (पीई) खरपतवार नाशकों को प्रयोग नहीं किया जा सके, तो यंह खरपतवार नाशक प्रयोग करने चाहिए। चूंकि यह खरपतवारनाशक खड़ी फसल में प्रयुक्त होते हैं। अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियां रखनी चाहिए जैसे, सही मात्रा व सही समय पर, सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण–2–4 डी, आइसोप्रोटोरोन इत्यादि।

खरपतवारनाशक की मात्रा ज्ञात करना : कई बार कृषकों को खरपतवारनाशी की सही मात्रा ज्ञात करने या जानने में परेशानी होती है। अतः स्वयं किसान भी सूत्र द्वारा सही मात्रा ज्ञात कर सकते हैं। इसके लिये खरपतवारनाशक के डिब्बे पर उसकी सान्द्रता (प्रतिशत) ई.सी., डब्ल्यू.पी., जी, एस.पी., डब्ल्यू.एस.पी., एल. या एस.एल. के रूप में लिखी होती हैं।

$$\text{खरपतवारनाशक की मात्रा प्रति हेक्टेयर} = \frac{\text{खरपतवारनाशक के प्रयुक्त किए जाने वाले सक्रिय तत्व की मात्रा (a.i)}}{\text{खरपतवारनाशक की सान्द्रता (\%)}} \times 100$$

उदाहरण : गेंहू की फसल में चौडी पत्ती वाले खरपतवारों के नियत्रंण हेतु मेटसल्फूरॉनमिथाईल 20 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. नामक खरपतवारनाशक की 4 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से कितनी व्यवसायिक मात्रा की जरूरत पडेगी।

$$\text{खरपतवारनाशक की व्यवसायिक मात्रा} = \frac{4}{20} \times 100 = 20 \text{ ग्राम}$$

एकीकृत खरपतवार नियंत्रण विधि :–वर्तमान में विभिन्न फसलों एवं फसल पद्धतियों की परिस्थितियों में खरपतवार नियंत्रण की केवल एक ही विधि से खरपतवारों का नियंत्रण सम्भव नहीं हो पाता है, अपितु खरपतवार नियंत्रण के अच्छे परिणाम हेतु दो या अधिक विभिन्न विधियों को समायोजित (एक साथ अपनाना) करना चाहिए। जैसे:– गेहूँ में शून्य/बिना जुताई के साथ आइसोप्रोट्रान शाकनाशी का प्रयोग, गेहूँ की शीघ्र वृद्धि करने वाली किस्म पी.बी.डब्ल्यू–343 लगाना, गेहूँ की क्रॉस एवं सघन बोनी आदि। चना, मटर, मसूर एवं अलसी में एक बार शाकनाशी के प्रयोग के बाद एक हाथ से निदांई। गन्ने के अंकुरण के बाद गन्ने की कटाई से प्राप्त सूखी पत्तियों को खेत में बिछाकर भी खरपतवार–नियंत्रण किया जा सकता है। इससे खेत में नमी भी अधिक समय तक बनी रहती है और अंकुर छेदक का प्रकोप भी कम हो जाता है। इस विधि के उपयोग प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ शाकनाशी रसायनों पर निर्भरता कम होकर पर्यावरण को भी सुरक्षित रखने में मदद मिलती है।

खरपतवानाशकों के प्रयोग सम्बंधी सावधानियां

कई बार खरपतवारनाशक रसायनों के गलत प्रयोग से हानि हो जाती है अत: निम्न सावधानियों को ध्यान में रखें और सुरक्षित रहें।

- शाकनाशी रसायनों की फसल के अनुसार अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए।
- शाकनाशी रसायनों को उचित समय पर प्लेट फेन या फ्लडजेट नोजल का प्रयोग कर छिड़काव करें।
- शाकनाशियों के छिड़काव में फ्लेट फेन या फ्लड जेट नोजल को ही उपयोग में लाएं।
- शाकनाशी रसायनों का घोल तैयार करने के लिये पानी की सही मात्रा (500–600 ली./है) का उपयोग करना चाहिए।
- बुवाई से पहले या बुवाई के तुरन्त बाद मृदा में प्रयोग किये गये शाकनाशियों को अधिक प्रभावशाली व क्रियाशील रखने के लिये आवश्यक है कि मृदा में नमी पर्याप्त मात्रा में हो।
- छिड़काव करते समय ध्यान रहे कि आपका चेहरा हवा के बहाव के विपरीत न हो व मास्क, दस्तानों इत्यादि का प्रयोग करें।
- शाकनाशी का छिड़काव तेज हवा में नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव समाप्त होने बाद साबुन से अच्छी तरह हाथ, मुँह अवश्य धो लें। अच्छा हो यदि स्नान भी कर लें क्योंकि सभी शाकनाशी रसायन जहरीले होते हैं।
- शाकनाशी के उपयोग के पश्चात इसके खाली डिब्बा/पैकेट आदि को गढ्ढे में दबा दें व नष्ट कर दें।

तालिका–4 रबी की फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु काम में लिए जा सकने वाले खरपतवारनाशक एवं उनकी जानकारी

फसल का नाम	खरपतवार नाशक का तकनीकी नाम	प्रयोग की जाने वाली मात्रा		प्रयोग का तरीका
		सांद्रता (%)	सक्रिय तत्व/हेक्टर	
गेहूँ	2–4 डी (एस्टर साल्ट)	36% ई.सी.	500 ग्राम/हे.	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु। बौनी किस्मों बुवाई के 30–35 दिन व अन्य किस्मों में 40–50 दिन पर 500–700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। 2–4, डी का प्रयोग अर्जुन (एच. डी. 2009) किस्म में न करें।
	2–4 डी (अमाइन साल्ट)	72% डब्ल्यू.एसी.सी.	750 ग्राम/हे.	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयुक्त करें। बौनी किस्मों बुवाई के 30–35 दिन व अन्य किस्मों में 40–50 दिन पर 500–700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। 2–4, डी का प्रयोग अर्जुन (एच.डी. 2009) किस्म में न करें।
	आइसोप्रोटोरोन	75% डब्ल्यू.पी.	750 ग्राम/हे. (हल्की मिट्टी में) 1.25 कि.ग्रा./हे. (भारी मिट्टी हेतु)	संकरी पत्ती वाले खरपतवार – जंगली जई, गुल्ली डंडा नियंत्रण। बुवाई के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई प चात् 500–700 लीटर पानी में घोलकर एकसार छिड़काव करें।
	मेटसफ्यूरोन मिथाइल	20% डब्ल्यू.पी.	4 ग्राम/हे.	चौडी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रण हेतु। प्रथम सिंचाई के बाद (30–35 दिन फसल अवस्था पर) 500 मिलीलीटर सरफेक्टेंट के साथ पानी में घोलकर छिड़काव करें।
	सल्फोसल्फ्यूरान	75% डब्ल्यू.पी.	25 ग्राम/हे.	संकरी पत्ती (जंगली जई, गुल्ली डंडा/गेहूँसा) व कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को भी नष्ट करता है। प्रथम सिंचाई के बाद (30–35 दिन की फसल अवस्था पर) 0-5% सरफेक्टेंट के साथ पानी में घोलकर छिड़काव करें।
	सल्फोसफयूरॉन + मेटसल्फयुरॉन मिथाईल	75% + 5% डब्ल्यू. जी.	32 ग्राम सक्रिय तत्व	बुवाई के 30–35 दिन पर प्रति हैक्टेयर की दर से 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

	मेटसल्फ्युरान मिथाईल+ कारफेन्ट्राजान +0.2 प्रतिशत एनआईएस क्लोडिनोफोप प्रोपार्जिल + मेटसल्फयुरान मिथाईल	4 +20% 15%+1% (मिश्रित उत्पाद)	25 ग्राम सक्रिय तत्व 52 ग्राम सक्रिय तत्व	बुवाई के 30–35 दिन के अंदर 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें। सकड़ी व चौड़ी पत्ती खरपतवारों को नष्ट करता है। बुवाई के 30–35 दिन प चात (पहली सिंचाई के बाद) 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
जौ	2–4 डी (एस्टर साल्ट)	33% ई.सी.	500 ग्राम/हे.	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु। बौनी किस्मों बुवाई के 30–35 दिन करें।
	2–4 डी (अमाइन साल्ट)	72% डब्ल्यू.एसी.सी.	750 ग्राम/हे.	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयुक्त करें। बौनी किस्मों बुवाई के 30–35 दिन करें।
	आइसोप्रोटोरोन	75% डब्ल्यू.पी.	750 ग्राम/हे. (हल्की मिट्टी में) 1.25 कि.ग्रा./हे. (भारी मिट्टी हेतु)	संकरी पत्ती वाले खरपतवार – जंगली जई, गुल्ली डंडा को नियंत्रणरा मे प्रभावी। बुवाई के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई प चात् 500–700 लीटर पानी में घोलकर एकसार छिड़काव करें।
चना	फ्लूक्लोरेलिन	45 ई.सी.	500 ग्राम/हे.	बुवाई के पूर्व छिड़काव कर भूमि में मिलायें।
	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1.0 किग्रा/हे.	अंकूरण पूर्व 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
सरसों	फ्लूक्लोरेलिन	45 ई.सी.	1 लीटर सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर	बुवाई के पूर्व, खेत में मिलायें।
	ट्राइफ्लोरेलिन	48 ई.सी.	750 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	बुवाई के पूर्व, खेत में मिलायें।
	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	बुवाई के तुरंत पश्चात् अंकूरण पूर्व।
	ओक्साडाइजिल	6 ई.सी.	90 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व।
अलसी	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व।
	पेण्डीमेथिलिन+इमेजिथापर	30 ई.सी.+2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद)	750 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व।
धनियाँ	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण से पूर्व बुवाई के तुरंत बाद
मटर	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
	पेण्डीमेथिलिन+इमेजिथापर	30 ई.सी.+2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद)	750 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
मटर (बटला)	इमेजिथापर	10 एस.एल.	50 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	बुवाई के 20–30 दिन पश्चात्
मसूर	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
	पेण्डीमेथिलिन+इमेजिथापर	30 ई.सी.+2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद)	750 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
राजमा	पेण्डीमेथिलिन	30 ई.सी.	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
	पेण्डीमेथिलिन+इमेजिथापर	30 ई.सी.+2 ई.सी. (मिश्रित उत्पाद)	750 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	अंकूरण पूर्व
	इमेजिथापर	10 एस.एल.	50 ग्राम सक्रिय तत्व/है.	बुवाई के 20–30 दिन पश्चात्
गन्ना	हेक्साजाइनोन+डाइयूरोन	46-8% + 13.2%	1 किलो सक्रिय तत्व/है.	गन्ने के अंकूरण से पूर्व

✺✺✺

राजस्थान के दक्षिण-पूर्व क्षेत्र में इसबगोल की व्यवसाहिक खेती एवं उपयोग

भुवनेश नागर, गगनदीप सिंह, हनुमान सिंह एवं भूरी सिंह
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

परिचय

आधुनिक युग मे खेती की बढ़ती लागत की वजह से किसानो ऐसी फसलो की ओर ध्यान आकर्षित हो रहा है, जिनकी उत्पादन लागत कम एवं मुनाफा ज्यादा होने की वजह से औषधीय फसलें किसानों की पसंद बनी हुई हैं। ऐसी ही ईसबगोल (प्लांटैगो ओवेटा फोर्स्क.) एक अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय फसल के साथ साथ नकदी फसल भी है जिसके बीज आहार फाइबर से भरपूर होते हैं और बेहतर आंत और हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के साथ पाचन संबंधी समस्याओं को कम करने के लिए उपयोगी होते हैं। विश्व में भारत देश ईसबगोल उत्पादन एवं क्षेत्रफल में प्रथम स्थान पर है वर्तमान में ईसबगोल के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग देश से बाहर निर्यात कर औषधीय फसलों के निर्यात में इसका प्रथम स्थान हैं। भारत में इसका उत्पादन प्रमुख रूप से गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में करीब 50 हजार हेक्टर में हो रहा हैं। विश्व में ईसबगोल के प्रमुख उत्पादक देश ईरान, ईराक, अरब अमीरात, भारत, फिलीपीन्स इत्यादि हैं। जबकि इसका सबसे बडा उपभोक्ता अमेरिका है। इसबगोल की भूसी सबसे कीमती एवं औषधीय रूप मे उपयोगी है जिसकी मात्रा बीज के उत्पादन मे मात्र 30 प्रतिशत होती है वर्षो से पुरे विश्व मे इसकी भूसी का उपयोग औषधि के रूप मे कब्ज, पेचिस, दस्त एवं पेट की अन्य बीमारियों के उपचार हेतु किया जाता है इसके बीज मे लगभग 13 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

जलवायु एवं भूमि की तैयारी : ईसबगोल की अच्छी पैदावार हेतु ठंडी एवं शुष्क जलवायु उपयुक्त हैं। इसबगोल की फसल को पकते समय शुष्क मौसम उपयुक्त होता है। फसल के पकते समय हल्की बारिश एवं ओस का होने पर फसल की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अंकुरण के लिए 20–25 डिग्री सेल्सियस तथा फसल के पकने के समय पर 30–35 डिग्री सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त होता है। ईसबगोल के अच्छे उत्पादन के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट भूमि जिसका पी–एच मान 7–8 तक हो, उपयुक्त हैं।

भूमि की तैयारी के समय 10–15 टन प्रति हेक्टर की मात्रा से गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद को अच्छे से मिटटी मे मिला देवे एवं अच्छे से जुताई कर मिटटी को भुरभुरी करने के बाद पाटा चलाकर मिटटी को समतल कर लेवें।

उन्नत किस्में : इसबगोल की महत्वपूर्ण उन्नत किस्मे जवाहर ईसबगोल 4, गुजरात ईसबगोल 1, हरियाणा ईसबगोल – 2, हरियाणा ईसबगोल 5, निहारिका, ट्राबे सलेक्शन 1 से 10 आदि है जबकि गुजरात ईसबगोल 2, आर आई 1 एवं आर आई 89 शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपर्युक्त किस्म है।

बुवाई का समय : यह रबी मौसम की फसल है। अगेती बुवाई करने के कारण ईसबगोल की वानस्पतिक वृद्धि ज्यादा होती है परिणामस्वरुप फसल के गिर जाने के आसार ज्यादा होते है एवं देरी से बुवाई करने पर वानस्पतिक विकास कम होता हैं इसलिए ईसबगोल की बुवाई के लिए अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के द्वितीय सप्ताह सबसे अच्छा समय होता है। इसके पश्चात बोआई करने पर उपज में समय के साथ कमी आती है।

बीज की मात्रा : ईसबगोल की बुवाई के लिए बडे आकार एवं रोग रहित बीज की 4–5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टर के हिसाब से 30 सेंटीमीटर बीज से बीज की दूरी एवं 60 सेंटीमीटर कतार से कतार की दूरी पर 1 सेंटीमीटर तक की गहराई पर करने से फसल का अच्छा उत्पादन लिया जा सकता हैं।

बीजोपचार : ईसबगोल की फसल को तुलसिता रोग से बचाने हेतु बीज को मेटलैक्सिकल 35 डब्ल्यू. एस. 5 ग्राम मात्रा प्रति किलो एवं उखटा रोग से बचाव हेतु कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें। मृदा उपचार हेतु 2.5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टर की दर से जैविक फफंदी नाशक ट्राइकोडर्मा को अच्छी पकी हुई गोबर की खाद अथवा वर्मीकम्पोस में मिला कर बुवाई से पहले नमी युक्त खेत में मिलावे।

बोने की विधि : ईसबगोल की छिटकाव पद्धति से बुवाई करने पर अंतःस्स्य किग्राएं करने में कठिनाई आती हैं। अतः ईसबगोल की बुवाई कतार से कतार की दूरी 60 से.मी. रखते हुए एवं पौधे की दूरी 30 से. मी. रखते हुए करे एवं बीज को 1 से.मी. से ज्यादा गहरा न बोये।

खाद एवं उर्वरक : ईसबगोल का अच्छा उत्पादन हेतु 10–15 टन प्रति हेक्टर की मात्रा से गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद को भूमि की तैयारी के समय अच्छे से मिटटी मे मिला देवे। 15–18 किलो नत्रजन को दो भागो में प्रथम खेत की तैयारी के समय एवं दूसरा पहली सिंचाई के बाद डालें। 15–20 किलो पोटाश प्रति हेक्टयर की दर से बुवाई के समय अच्छे से मिटटी मे मिला देवे।

सिंचाई : इसबगोल के बीज की बुआई के समय पर्याप्त नमी का होना बीज अंकुरण के लिए फायेदमंद होती है । इसके बाद प्रथम सिंचाई 30–35 दिन बाद एवं दूसरी सिंचाई 65–70 दिन बाद देवें। फूल एवं दाना भरने की अवस्था पर सिंचाई देने पर रोगों का प्रकोप बढ जाता हैं तथा उपज में कमी आ जाती हैं।

निंदाई–गुडाई : इसबगोल की फसल की अच्छी बढ़वार के लिए कम से कम दो निराई गुड़ाई की आवश्कयकता होती है पहली फसल की बुआई के 20–25 दिन बाद एवं दूसरी 40–50 दिन बाद ताकि खरपतवार फसल को नुकसान न पहुंचा सकें।

फसल की कटाई एवं उपज : ईसबगोल की फसल 100 से 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है जो कि किस्म के प्रकार पर निर्भर करता है।। पकने पर ऊपरी पत्तियां पीली एवं नीचे की पत्तियां सूख जाती हैं तथा सिरे भूरे रंग के हो जाते हैं। बालियों को मसलने पर बीज आसानी से बाहर आ जाता है। ईसबगोल की उन्नत तकनीक से खेती करने पर औसतन बीज उत्पादन 8 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टर तक ली जा सकती है।

उपयोग : इसबगोल की भूसी में फाइबर की मात्रा बहुत ज्यादा होती है जिसके सेवन से कोलेस्ट्रॉल लेवल को कम करने मे सहायक होता है। कब्ज की समस्या में दो चम्मच इसबगोल के पावडर को गुनगुने पानी के साथ रात मे सोते समय सेवन करने पर कब्ज मे आराम मिलता है। इसबगोल को दही के साथ मिलाकर सेवन करने पर डायरिया के इलाज में सहायक होता है। इसबगोल में जिलेटिन के पाए जाने की वजह से जो शरीर में इंसुलिन और ब्लड शुगर लेवल कम करने मे सहायक होता है जिससे डायबिटीज को नियंत्रित करने मे मददगार होता है।

❋❋❋

शून्य जुताई : टिकाऊ कृषि और मृदा स्वास्थ्य की कुंजी

शालिनी मीणा, उदिति धाकड, रामकिशन मीणा एवं वर्षा गुप्ता

कृषि महाविद्यालय, कोटा

परिचय

जुताई (टिलेज) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें यांत्रिक हल से कटाई, खुदाई और पलटाई करके भूमि को बुवाई के लिए तैयार किया जाता है। "शून्य जुताई (जीरो टिलेज)" वह प्रक्रिया है जिसमें फसल के बीजों को बिना किसी पूर्व भूमि तैयारी के ड्रिलर के माध्यम से बोया जाता है और जहाँ पिछली फसल के अवशेष मौजूद होते हैं। शून्य जुताई या नो–टिल खेती एक कृषि पद्धति है जो पारंपरिक जुताई के माध्यम से मिट्टी को परेशान करने से बचाती है, जो नमी, कार्बनिक पदार्थ और मिट्टी की संरचना को संरक्षित करने में मदद करती है। यह विधि मिट्टी के कटाव को कम करती है, जल प्रतिधारण में सुधार करती है और श्रम लागत को कम करती है।

भारतीय किसानों ने पहली बार 1960 के दशक में "नो टिल" रणनीति का इस्तेमाल किया। भारत के उत्तर–पश्चिम में चावल–गेहूं की खेती प्रणाली हरित क्रांति द्वारा संभव हुई। इंडो–गंगा के मैदानों में, जहाँ चावल–गेहूँ की खेती की जाती है, शून्य–जुताई पद्धति का उपयोग किया जाता है। अनुचित मिट्टी और जल प्रबंधन प्रथाओं, चावल की कटाई समय से ना होने पर, गेहूं की बुवाई में देरी हो जाती है जिससे चावल और गेहूं दोनों की पैदावार में कमी हो जाती है। इस समस्या को हल करने के लिए, 1960 के दशक में जीरो टिलेज विधियाँ शुरू की गईं, जिसमें चावल की कटाई के बाद, बिना किसी हस्तक्षेप के गेहूं की बुआई की जाएगी। इसके अलावा चावल–मक्का बोने की जीरो टिलेज तकनीक का उपयोग आंध्र प्रदेश राज्य के दक्षिणी जिलों में किया जाता है, जिसमें गुंटूर और पश्चिमी गोदावरी के कुछ क्षेत्र शामिल हैं। जीरो टिलेज का महत्व कटाव को कम करके, मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाकर और जल दक्षता को बढ़ावा देकर टिकाऊ खेती में इसके योगदान में निहित है। यह सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बढ़ाता है, पारिस्थितिकी तंत्र की तन्यकता को बढ़ाता है, और कार्बन पृथक्करण में सहायता करता है, जो जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आ्थक रूप से, यह विशेष रूप से विकासशील क्षेत्रों में श्रम और मशीनरी लागत को कम करके किसानों को लाभ पहुंचाता है। इस पद्धति में उत्पादकता को मृदा संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़कर खेती में क्रांति लाने की क्षमता है।

उत्पादकता पर प्रभाव: शून्य जुताई (जीरो टिलेज) का उत्पादकता पर प्रभाव व्यापक है, जो फसल की पैदावार, जल संरक्षण और श्रम दक्षता को प्रभावित करता है। जीरो टिलेज से मिट्टी की नमी और कार्बनिक पदार्थ को संरक्षित करके फसल की पैदावार में वृद्धि देखी गई है, जैसा कि उत्तरी अमेरिका के केस स्टडीज में देखा गया है, जहां मक्का और सोयाबीन की पैदावार बढ़ी है, तथा दक्षिण एशिया, जहां बेहतर मिट्टी की संरचना और जल प्रतिधारण के कारण गेहूं और चावल की पैदावार में सुधार हुआ है।

जीरो टिलेज मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों को बनाए रखने, वाष्पीकरण को कम करने और जल प्रतिधारण में सुधार करके जल संरक्षण में भी योगदान देता है, जो विशेष रूप से सूखाग्रस्त क्षेत्रों में सिचांई की जरूरतों को 30þ तक कम कर सकता है। जीरो टिलेज, जुताई और मिट्टी की तैयारी की आवश्यकता को समाप्त करता है, जिससे श्रम और ईंधन की लागत में कमी होती है द्य अध्ययनों से पता चलता है कि जीरो टिलेज अपनाने से श्रम लागत में 50þ तक की कमी आ सकती है।

मिट्टी पर प्रभाव: जीरो टिलेज (जीरो टिलेज), मिट्टी के स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव डालता है द्य यह मिट्टी की संरचना, पोषक चक्रण, सूक्ष्मजीव गतिविधि और कीट–खरपतवार प्रबंधन को प्रभावित करता है। यह प्राकृतिक मिट्टी की संरचना को संरक्षित करता है और सतह पर फसल के अवशेषों को बनाए रखता है, एक सुरक्षात्मक गीली घास बनाता है जो मृदा कटाव को रोकता है, नमी को बनाए रखता है और कार्बनिक पदार्थों में योगदान देता है। यह कार्बनिक पदार्थ जल प्रतिधारण, पोषक तत्व प्रावधान और बेहतर मिट्टी की संरचना के लिए महत्वपूर्ण है।

जीरो टिलेज मिट्टी के कटाव को प्रभावी ढंग से कम करता है, पोषक तत्वों से भरपूर ऊपरी मिट्टी को बनाए रखने और दीर्घकालिक मिट्टी की उर्वरता का समर्थन करने में मदद करता है। यह पोषक तत्वों के नुकसान को रोककर कुशल पोषक चक्रण को भी बढ़ावा देता है, जो सिंथेटिक उर्वरकों और उनके संबंधित पर्यावरणीय प्रभावों की आवश्यकता को कम करता है। यह विधि एक संपन्न सूक्ष्मजीव समुदाय को बढ़ावा देती है, सूक्ष्मजीव बायोमास और विविधता को बढ़ाती है, जो फसलों में पोषक तत्वों के चक्रण और रोग प्रतिरोधक क्षमता में सहायता करती है। जीरो टिलेज लाभकारी जीवों के लिए भी आवास प्रदान करके कीट और खरपतवार प्रबंधन में लाभ प्रदान करता है, कुल मिलाकर, जीरो टिलेज स्वस्थ, अधिक लचीली मिट्टी और टिकाऊ कृषि पद्धतियों में योगदान देता है।

पर्यावरण पर प्रभाव: शून्य जुताई (जीरो टिलेज) खेती के महत्वपूर्ण पर्यावरण मित्र प्रक्रिया हैं, जो इसे कृषि उत्पादकता को स्थिरता के साथ संतुलित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मिट्टी की गड़बड़ी से बचने के लिए जीरो टिलेज मिट्टी की संरचना को संरक्षित करता है, जैव विविधता को बढ़ाता है, कटाव को कम करता है, और जल प्रतिधारण में सुधार करता है, जिससे स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र बनते हैं। मिट्टी के कटाव को कम करके, जीरो टिलेज पोषक तत्वों और तलछट के बहाव को भी कम करता है, जिससे पानी की गुणवत्ता की रक्षा होती है। मिट्टी की जैव विविधता का संरक्षण सूखे और बीमारी जैसे तनावों को झेलने में सक्षम अधिक लचीले पारिस्थितिकी तंत्र का समर्थन करता है। जीरो टिलेज मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीकरण को रोककर और कार्बन पृथक्करण को बढ़ाकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में मदद

करता है, जिससे कृषि मिट्टी कार्बन सिंक में बदल जाती है। इसके अतिरिक्त, जुता और ईंधन–गहन संचालन की कम आवश्यकता ऊर्जा की खपत और उत्सर्जन को कम करती है, जिससे जीरो टिलेज कृषि के कार्बन पदचिह्न को कम करने और जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने में एक प्रभावी उपकरण बन जाता है। जीरो टिलेज मिट्टी और जल संसाधनों को संरक्षित करके, दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रबंधन का समर्थन करके, और ईंधन, मशीनरी और लसचा लागत में कमी के माध्यम से कृषि लाभप्रदता को बढ़ाकर स्थिरता में योगदान देता है। विभिन्न जलवायु और मिट्टी के लिए इसकी अनुकूलनशीलता जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और शमन में इसकी भूमिका को मजबूत करती है।

भविष्य के पहलू: जीरो टिलेज को आधुनिक कृषि की चुनौतियों के लिए एक महत्वपूर्ण समाधान के रूप में स्थापित किया गया है, जो बढ़ती जनसंख्या की मांग और पर्यावरण संबंधी चिंताओं के सामने महत्वपूर्ण क्षमता प्रदान करता है। जीरो टिलेज का भविष्य सटीक कृषि, रोबोटिक्स, एआई और जैव प्रौद्योगिकी जैसी तकनीकी प्रगति द्वारा आकार लेता है। ये नवाचार किसानों को जीरो टिलेज को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने की अनुमति देते हैं, बीज प्लेसमेंट, सिंचाई और मिट्टी प्रबंधन को अनुकूलित करने के लिए जीपीएस–निर्देशित मशीनरी, सेंसर और ड्रोन का उपयोग कर सकते हैं। रोबोटिक्स और स्वचालित मशिनरी, श्रम लागत को कम करते हैं, जबकि जैव प्रौद्योगिकी खरपतवार नियंत्रण को संबोधित करने में मदद कर सकती है, जिससे जीरो टिलेज अधिक कुशल और सुलभ हो जाता है। जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने में जीरो टिलेज की भूमिका महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसकी प्रथाएँ मिट्टी की नमी को संरक्षित करने, कटाव को कम करने और कार्बन पृथक्करण को बढ़ाने में मदद करती हैं, जो सभी जलवायु परिवर्तनशीलता और चरम मौसम की घटनाओं के खिलाफ लचीलापन बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। जलवायु शमन और अनुकूलन लक्ष्यों के साथ जीरो टिलेज का संरेखण जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि की प्रतिक्रिया में इसकी प्रासंगिकता को मजबूत करता है, जिससे सरकारों, शोधकर्ताओं और उद्योग से रुचि और समर्थन आकर्षित होता है। जैसे–जैसे तकनीक बाधाओं को कम करती जा रही है और जीरो टिलेज की दक्षता में वृद्धि हो रही है, अपनाने की दरें बढ़ने की उम्मीद है, खासकर विकासशील देशों में जहां टिकाऊ उत्पादकता की तत्काल आवश्यकता है। सरकारी समर्थन, शिक्षा और हितधारकों के बीच सहयोग के साथ, जीरो टिलेज भविष्य की टिकाऊ कृषि के लिए एक प्रमुख रणनीति बनने के लिए तैयार है।

निष्कर्ष: जीरो टिलेज आधुनिक कृषि चुनौतियों और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को संबोधित करने के लिए एक महत्वपूर्ण कृषि पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है। मिट्टी की गड़बड़ी को कम करके, जीरो टिलेज मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाता है, पानी का संरक्षण करता है, मृदा कटाव को कम करता है और जैव विविधता को बढ़ावा देता है। कार्बन को अलग करने और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने की इसकी क्षमता इसे जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में एक मूल्यवान उपकरण बनाती है। इसके अलावा, जीरो टिलेज के आर्थिक लाभ, जैसे कि कम श्रम, ईंधन और मशीनरी लागत, इसकी अपील को बढ़ाते हैं, विशेष रूप से संसाधन–सीमित क्षेत्रों में किसानों के लिए। जैसे प्रौद्योगिकी में प्रगति, जीरो टिलेज को अधिक सुलभ और कुशल बनाती है, वैसे–वैसे टिकाऊ कृषि और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका बढ़ती रहेगी, जो इसे दुनिया भर में भविष्य की कृषि प्रथाओं के लिए एक आवश्यक रणनीति के रूप में स्थापित करेगी।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं कृषि

नरेश कुमार, रोनक कूड़ी एवं जितेंद्र कुमार

कृषि विश्वविद्यालय,जोधपुर एवं के.ना.के. उद्यानिकी महाविद्यालय मंदसौर, मध्यप्रदेश ।

संपूर्ण विश्व में बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लक्ष्य से कृषि उत्पादकता को बढ़ाने की दिशा में नई–नई तकनीक का उपयोग हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या में 2 अरब लोगों की वर्दी होने की संभावना है जिनके पोषण के लिए खाद्य उत्पादकता में लगभग 60 प्रतिशत तक वृद्धि करना आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा मशीन लर्निंग की सहायता से इन आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। वास्तव में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग तथा आईओटी ए सेंसर एल्गोरिदम के लिए वास्तविक समय आंकड़े प्रदान करते हैं। इससे न केवल षि उत्पादकता को बढ़ाने में सहायता मिलेगी अपितु इनके प्रयोग से हम कृषि उत्पादों की उत्पादन लागत में भी काफी हद तक कमी ला सकते हैं। मौसम, धूप, वर्षा, पशु –पक्षी, कीटों व रोगजनको के प्रवासी पैटर्न, उर्वरकों व किटनाशी रसायनों का उपयोग, सिंचाई चक्र सभी उत्पादकता को प्रभावित करते हैं, जिसके बारे में सटीक जानकारी कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से प्राप्त की जा सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और भारत : जॉन मैकार्थी को कृत्रिम बुद्धिमत्ता का जनक माना जाता है जो 1950 के दशक में ही आरंभ हो चुका था, परंतु 1970 के दशक में इसके महत्व को नई पहचान मिली जापान देश का इस परियोजना को आगे बढ़ाने में अहम योगदान रहा है भारत में वर्तमान में लगभग 40000 से 42000 कृत्रिम बुद्धिमत्ता विशेषज्ञ कार्यरत हैं। दक्षिण भारत में स्थित शहर बेंगलोर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रमुख केंद्र बन चुका है, जहां लगभग 1000 से भी अधिक कंपनियां कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों में सफलतापूर्वक कर रही हैं। आज समावेशी वित्तीय विकास में कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक अत्यंत सफल सिद्ध हो रही हैं। जैसे की कर्षकों को सामयिक सलाह प्रदान करने और बढ़ती उत्पादकता की दिशा में अप्रत्याशित कारकों को समलित में कृत्रिम बुद्धिमत्ता काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। भारत में किसानों एवं उनके परिवारों की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने में कृषि महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। भारत में कृषि तकनीक, स्टार्ट–अप जैसे क्रॉपइन, देहात, फसल तथा बीजक सदृस्य कंपनियाँ विभिन्न फसलों से अधिकाधिक उपज प्राप्त करने हेतु तकनीकी सहायता उपलब्ध करा रही है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रकार : कृत्रिम बुद्धिमत्ता को निम्नलिखित चार चरणो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

1. प्रतिक्रियाशील मशीन : यह मशीनें स्थितियों पर प्रतिक्रिया कर सकती हैं। यह मशीन सभी संभावित विकल्पों का विश्लेषण करके सर्वश्रेष्ठ को चुनती है। परंतु ऐसी मशीनों में याददाश्त की कमी होती है। यह मशीन भविष्य के अनुप्रयोगों को सूचित करने के लिए पिछले अनुभवों का उपयोग नहीं कर सकती है। ऐसे की एप्पल का सीरी और गूगल का वॉइस सिस्टम

2. परिसीमित मेमोरी : यह कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम भविष्य के लोगों को सूचित करने के लिए पिछले अनुभवों का उपयोग करने में सक्षम है। सेल्फ ड्राइविंग वाहन इसका एक अच्छा उदाहरण है। ऐसे वाहनों में स्वत: निर्णय लेने की प्रणाली होती है। जिससे कि वाहन स्वत: ही लेन बदल लेने का निर्णय कर लेते हैं।

3. मस्तिष्क का सिद्धांत : इस प्रकार की तकनीक दूसरों को समझने के लिए संदर्भित होती हैं। जैसे कि इरादे, इच्छाएं और राय। यद्यपि इस प्रकार की कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभी तक मौजूद नहीं है।

4. आत्म जागरूकता : आत्म जागरूकता कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सबसे उत्तम और परिष्कृत स्तर है। इस प्रकार की तकनीक में स्वयं की भावना, जागरूकता और चेतना होती है। हालांकि यह तकनीक अभी तक मौजूद नहीं है, लेकिन भविष्य में यह निश्चित रूप से क्रांतिकारी सिद्ध होगी।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र से संबंधित सरकारी नीतियाँ : कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं संबंधित प्रौद्योगिकियों का लाभ आम जनता तक पहुंचाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने कुछ अहम योजनाओं का गठन किया है। जैसे कि सरकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल मैन्युफैक्चरिंग, बिग डाटा इंटेलिजेंस, रोबोटिक्स, रियल टाइम डाटा और क्वांटम कम्युनिकेशन के क्षेत्र में शोध, प्रशिक्षण, मानव संसाधन और कौशल विकास को बढ़ावा देने की योजना बना रही हैं। केंद्र सरकार का थिंकटैंक नीति आयोग शीघ्र ही राष्ट्रीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करेगा। सर्वविदित है की नीति आयोग कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा देश में व्यवसाय करने के तरीके को परिवर्तित करने के लिए गूगल के साथ साझेदारी द्वारा कई प्रशिक्षण शुरू करने जा रहा हैं। जिससे कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक के प्रयोग को और प्रोत्साहन मिलेगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का कृषि के क्षेत्र में महत्व

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का कृषि क्षेत्र में प्रयोग निम्न प्रकार है:

1. ड्रोन : गहन क्षेत्र विश्लेषण, लंबी दूरी की फसल छिड़काव और उच्च दक्षता वाली फसल निगरानी के माध्यम से फसल की उपज में वृद्धि करने के नए उपाय सुझाने जैसे कारणों से ड्रोन तकनीक समय के साथ तेजी से किसानो के लिए अनमोल होती जा रही हैं।

2. चालक रहित ट्रैक्टर : सेंसर, रडार तथा जीपीएस सिस्टम जैसी 'ऑफ द शेल्फ' तकनीकों के साथ और अधिक परिष्कृत सॉफ्टवेयर का संयोजन किसान जल्द ही इस एक सदी पुरानी मशीन को रोबोट को सौंपने में सक्षम होंगे।

3. स्वचलित सिंचाई प्रणाली : स्वचालित सिंचाई प्रणाली को औसत उपज बढ़ाने के लिए वांछित मिट्टी की स्थिति को लगातार बनाए रखने के लिए रियल टाइम मशीन लर्निंग का उपयोग करने के लिए डिजाइन किया गया है।

4. मृदा स्वास्थ्य निगरानी : पारंपरिक फसल स्वास्थ्य निगरानी के तरीके अविश्वसनीय रूप से समय लेने वाले होते हैं और सामान्यतया प्रकृति में स्पष्ट होते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता मशीन, लर्निंग इन ग्राउंड सेंसर, इंफ्रारेड इमेजरी तथा रियल टाइम वीडियो एनालिटिक्स उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। फसलों की गुणवत्ता में मृदा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती हैं। हालांकि उर्वरकों के अतिशय प्रयोग एवं वनों की कटाई में वृद्धि के कारण मृदा की गुणवत्ता में गिरावट आ रही हैं। ऐसे में मृदा उर्वरकता मे गिरावट आना स्वभाविक है। ऐसे में मृदा की गुणवत्ता का स्तर ज्ञात करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। जर्मनी के बर्लिन स्थित टेक स्टार्ट–अप (पीईटी) प्लांटिक्स नामक कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित एक गहन शिक्षण अनुप्रयोग विकसित किया है। जो कथित तौर पर मृदा में उपस्थित कीटों एवं रोग जनकों की स्थिति सहित संभावित रोगों और पोषक तत्वों की कमी की सुगमता से पहचान करता हैं। जिससे किसानों को आवश्यकता अनुसार उर्वरक का प्रयोग करके फसल की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायता मिल सकती हैं।

5. फसल की निगरानी : स्काईस्क्रेल टेक्नोलॉजी फसल स्वास्थ्य की निगरानी हेतु ड्रोन आधारित एरियल इमेजिंग समाधान प्रस्तुत करता है। इस प्रौद्योगिकी के अंतर्गत ड्रोन खेतों से आंकड़े एकत्रित करके आंकड़ों को यूएसबी ड्राइव के माध्यम से ड्रोन से कंप्यूटर में स्थानांतरित करता है। कंपनी कैप्चर की गई इमेज का विश्लेषण करने के लिए अल्गोरिदम का उपयोग करके विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। यह कृषको को जीवाणुओं, रोगाणुओं एवं कीटों की पहचान करने में किसानों की अत्यंत सहायता करता है। भारत में भी उद्योगों ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित फसल उपज भविष्य वाणी मॉडल विकसित करने हेतु सरकार के साथ हाथ मिलाया है। यह प्रणाली फसल उत्पादकता बढ़ाने कीट अथवा रोगों के प्रकोप की चेतावनी देने के लिए कृत्रिम बुद्धिमता आधारित तकनीक का प्रयोग करती है। किसानों को सटीक जानकारी देने के लिए कंपनियां भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के द्वारा उपलब्ध कराए गए रिमोट सेंसिंग आंकड़े, मृदा स्वास्थ्य कार्ड के आंकड़े, भारत मौसम विभाग के मौसम की भविष्यवाणी, मृदा के तापमान व नमी की जानकारी का विश्लेषण करके उपयुक्त जानकारी का उपयोग कराती है।

6. फसलों की भविष्यवाणी : जलवायु परिवर्तन तथा बदलते प्रदूषण को मध्यनजर किसानों के लिए बीज बोने का सही समय निर्धारित करना एक मुश्किल कार्य होता जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से किसान मौसम के भविष्यवाणी का उपयोग करके सही स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं जिससे उन्हें विभिन्न फसलों की योजना बनाने में सहायता मिल सकती है। जैसे की बीज कब होना है तथा कब नहीं विभिन्न कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा मशीन में लर्निंग टूल्स के माध्यम से कीटों के आक्रमण आदि को लेकर भी अलर्ट प्राप्त किया जा सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से किस वास्तविक समय में विभिन्न प्रकार के आंकड़े जैसे तापमान तथा वर्षा की स्थिति जल के उपयोग की स्थिति आदि का विश्लेषण करके समस्याओं की पहचान कर सकते हैं। इससे समय पर उचित निर्णय लेने में आसानी रहेगी फसल एग्रोटेक कंपनी कृषको को अधिक लाभ पहुंचाने के लिए सटीक अनुमान लगाने में सहायता करती है। कंपनी द्वारा खेती के आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए एप विकसित किया गया है। इसके अतिरिक्त इससे फसल सेंस नामक आईओटी डिवाइस विकसित किया है जो खेत की निगरानी में आंकड़े एकत्र करने में मदद करता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से कंपनी खेत के दृष्टिकोण से खास फसल लगाने की सलाह देती है।

7. खेतों की निगरानी : हम सब ने गांव में फसलों को पक्षियों से बचाने हेतु किसानो को खेतों में मचान बनाते देखा है, परंतु अब फसलों को पक्षियों द्वारा होने वाली क्षति से बचाने हेतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा मशीन लर्निंग जैसी तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा है। इससे रियल टाइम वीडियो फीड मॉनिटरिंग प्रणाली के जरिए तुरंत अलर्ट प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष : कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि उत्पादन को बढ़ाने, लागत को कम करने और संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। विश्व की बढ़ती जनसंख्या और खाद्य उत्पादन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, नई–नई तकनीकों का उपयोग आवश्यक हो गया है। कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग किसानों को स्मार्ट और सटीक खेती की दिशा में अग्रसर कर रहा है। इससे न केवल फसल उत्पादन में वृद्धि हो रही है, बल्कि खेती की लागत भी कम हो रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का सही और प्रभावी उपयोग करने से किसानों को अधिक लाभ हो सकता है और उनकी आजीविका में सुधार हो सकता है। इसके साथ ही, यह तकनीक जलवायु परिवर्तन और अन्य कृषि चुनौतियों से निपटने में भी सहायक सिद्ध हो रही है। भारत में, सरकार और निजी क्षेत्र मिलकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का प्रसार कर रहे हैं, जिससे देश की कृषि उत्पादकता और आत्मनिर्भरता में वृद्धि हो रही है। अंततः कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का उपयोग कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है, जिससे भविष्य में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी और किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

❋❋❋

कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन में उन्नति

संदीप कुमार, रघु नंदन शर्मा, मृणाल पाण्डेय एवं सोनू डांगी
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय,जोबनेर

प्रस्तावना

कृषि एवं पशुपालन का आपस में सम्बन्ध बहुत पुराना है। कृषि एवं पशुपालन एक दूसरे के पूरक है। कृषि से उपलब्ध हरा चारा, भूसा, पूआल, खली आदि पशुओं का प्रमुख आहार है। इसी प्रकार पशुओं से प्राप्त गोबर का प्रयोग कम्पोस्ट खाद के रूप में खेतों मे प्रयोग किया जाता है जिससे मृदा की उरर्वरा शक्ति बढती है। पशुओं द्वारा खेतो की जुताई के साथ–साथ परिवहन का कार्य भी किया जाता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां ग्रामीण जीवनशैली में पशुपालन एक अहम भूमिका निभाता है। पशुपालन न केवल कृषि गतिविधियों का समर्थन करता है बल्कि यह किसानों की आय का एक प्रमुख स्रोत भी है। समय के साथ कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन के क्षेत्र में नए–नए तकनीकी नवाचार और वैज्ञानिक शोध सामने आए हैं, जिनसे पशुपालन की प्रथाएं अधिक उन्नत, संगठित और लाभकारी हो रही हैं। पशुपालन में उन्नति का एक महत्वपूर्ण माध्यम कृषि प्रसार है, जिसके जरिए आधुनिक जानकारी, प्रौद्योगिकी और प्रशिक्षण किसानों तक पहुँचाए जाते हैं।

कृषि प्रसार की भूमिका: कृषि प्रसार का मुख्य उद्देश्य है, कृषि और पशुपालन से जुड़ी नई तकनीक, ज्ञान और शोध को किसानों तक पहुँचाना। यह प्रक्रिया किसानों को शिक्षित, प्रशिक्षित और तकनीकी रूप से सशक्त बनाने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को नवीनतम तकनीकों, उत्तम नस्लों, पोषण, चिकित्सा सेवाओं, प्रबंधन और मार्केटिंग से संबंधित जानकारियाँ दी जाती हैं। इससे उनकी उत्पादकता और आय में वृद्धि होती है।

1. तकनीकी जानकारी का प्रसार

कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन से जुड़ी नई तकनीकों का प्रसार किया जाता है। इसमें आधुनिक चारा उत्पादन, पशुओं के लिए बेहतर आहार, दूध उत्पादन में वृद्धि, और बीमारी से बचाव जैसी तकनीकों की जानकारी दी जाती है। वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करके पशुओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के उपाय बताए जाते हैं, जिससे उनका जीवनकाल बढ़ता है और वे अधिक उत्पादन दे पाते हैं।

2. प्रशिक्षण और कार्यशालाएँ

कृषि प्रसार के अंतर्गत पशुपालकों के लिए नियमित रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। इनमें किसानों को पशुपालन की नई तकनीकों, बीमारियों से बचाव, प्रजनन पद्धतियों और बाजार प्रबंधन के बारे में विस्तार से जानकारी दी जाती है। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम किसानों को नए कौशल सिखाते हैं, जिससे वे आधुनिक तरीके से पशुपालन कर सकें।

3. पशुपालन में प्रौद्योगिकी का उपयोग

कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन में तकनीकी नवाचारों का उपयोग बढ़ रहा है। इसमें भैंस और गायों के लिए स्वचालित दूध निकालने वाली मशीनें, पशु चिकित्सा सेवाओं में तकनीकी प्रगति और आहार पूरक तकनीकें शामिल हैं। इन तकनीकों के उपयोग से पशुपालक कम मेहनत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

4. सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल कृषि प्रसार

आज के दौर में सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल माध्यमों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। कृषि प्रसार के अंतर्गत किसानों को मोबाइल एप्स, वेब पोर्टल्स और ऑनलाइन संसाधनों के माध्यम से नवीनतम जानकारी प्रदान की जा रही है। पशुपालकों को उनके मोबाइल फोन पर कृषि, पशुपालन और बाजार से जुड़ी नई जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। इसके माध्यम से वे पशुपालन के नए तरीकों को आसानी से समझ सकते हैं और अपनी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं।

पशुपालन में उन्नति के लिए कृषि प्रसार के लाभ

1. उत्पादन क्षमता में वृद्धि : कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को बेहतर आहार, सही प्रबंधन और आधुनिक चिकित्सा सेवाओं की जानकारी मिलती है। इससे उनकी पशु उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। उदाहरण के तौर पर, दुधारू पशुओं के लिए पोषण पूरक आहार के उपयोग से दूध उत्पादन में वृद्धि होती है। इसी प्रकार, मांस उत्पादन करने वाले पशुओं के लिए सही नस्ल और आहार तकनीकों का उपयोग उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है।

2. पशु स्वास्थ्य में सुधार: कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को पशुओं के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं और बीमारियों से निपटने की जानकारी दी जाती है। नियमित टीकाकरण, समय पर चिकित्सा सेवाएँ और सही आहार देने से पशु स्वस्थ रहते हैं और उनकी उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। इसके साथ ही, पशुओं के प्रजनन और नस्ल सुधार के लिए नवीनतम तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिससे उन्नत नस्लें विकसित होती हैं।

3. रोजगार के अवसरों में वृद्धि : कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन के क्षेत्र में नए रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं। पशुपालन की नई तकनीकों और प्रथाओं के प्रसार से किसान नए व्यवसायिक अवसरों को पहचानते हैं और इसका लाभ उठाते हैं। इसमें डेयरी उद्योग, मांस उत्पादन, पोल्ट्री फार्मिंग, और ऊन उत्पादन जैसे क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

4. पर्यावरणीय संतुलन: कृषि प्रसार के माध्यम से जैविक और पर्यावरणीय रूप से स्थायी पशुपालन के तरीकों को बढ़ावा दिया जाता है। इसके अंतर्गत पशुओं के लिए प्राकृतिक आहार, जैविक खाद, और हरित चारा उत्पादन पर जोर दिया जाता है। इससे न केवल पशुओं का स्वास्थ्य सुधरता है, बल्कि पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पशुपालन के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि प्रसार का योगदान

1. डेयरी उद्योग : भारत में डेयरी उद्योग में कृषि प्रसार का महत्वपूर्ण योगदान है। षि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को उन्नत नस्लें, पोषण तकनीकें, स्वचालित दूध निकालने वाली मशीनें और दूध प्रबंधन की जानकारी दी जाती है। इससे किसानों को न केवल अधिक दूध उत्पादन में मदद मिलती है, बल्कि उनकी आमदनी भी बढ़ती है। साथ ही, डेयरी उत्पादों के मूल्यवर्धन की जानकारी भी दी जाती है, जिससे किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं।

2. मांस उत्पादन : पशुपालन में मांस उत्पादन का क्षेत्र भी कृषि प्रसार से प्रभावित है। कृषि प्रसार के तहत पशुओं की उचित देखभाल, आहार प्रबंधन और उन्नत प्रजनन तकनीकों की जानकारी दी जाती है। इससे मांस उत्पादन करने वाले पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि होती है और पशुपालकों को अधिक लाभ मिलता है। इसके साथ ही, मांस प्रसंस्करण और विपणन की जानकारी भी दी जाती है, जिससे पशुपालकों को मांस उत्पादन से अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

3. पोल्ट्री फार्मिंग : पोल्ट्री फार्मिंग भी पशुपालन का एक प्रमुख हिस्सा है, जिसमें कृषि प्रसार का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कृषि प्रसार के माध्यम से पोल्ट्री फार्मर्स को उन्नत आहार तकनीकें, टीकाकरण, और चिकन प्रबंधन की जानकारी दी जाती है। इसके अलावा, अंडा उत्पादन और मांस उत्पादन में सुधार के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रसार भी किया जाता है, जिससे पोल्ट्री उद्योग में वृद्धि होती है।

4. ऊन और पशु उत्पाद उद्योग : भारत में ऊन और पशु उत्पादों का भी एक महत्वपूर्ण बाजार है। कृषि प्रसार के तहत पशुपालकों को भेड़ पालन, ऊन उत्पादन, और ऊन की प्रोसेसिंग तकनीकों की जानकारी दी जाती है। इससे ऊन उत्पादन में वृद्धि होती है और पशुपालकों की आमदनी बढ़ती है। कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को ऊन उत्पादों के विपणन और उनके मूल्यवर्धन की जानकारी भी दी जाती है, जिससे वे अपने उत्पादों को बेहतर बाजार में बेच सकें।

चुनौतियाँ और समाधान

1. जागरूकता की कमी : ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी जागरूकता की कमी एक बड़ी चुनौती है। कई किसान और पशुपालक नई तकनीकों और कृषि प्रसार के महत्व से अनभिज्ञ होते हैं। इस चुनौती का समाधान यह है कि कृषि प्रसार कार्यक्रमों का विस्तार करके अधिक से अधिक किसानों और पशुपालकों तक जानकारी पहुँचाई जाए। इसके लिए स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण शिविर, जागरूकता कार्यक्रम और कार्यशालाओं का आयोजन किया जा सकता है।

2. वित्तीय समस्याएँ : पशुपालन में उन्नति के लिए किसानों के पास वित्तीय साधनों की कमी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। नई तकनीकें और प्रौद्योगिकीय साधनों के लिए आवश्यक निवेश की कमी से पशुपालकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार और वित्तीय संस्थाओं के द्वारा आसान ऋण योजनाएँ और सब्सिडी प्रदान की जानी चाहिए, ताकि किसान नई तकनीकों का लाभ उठा सकें।

3. जानकारी का अभाव : कई ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालकों तक जानकारी पहुँचाने के लिए प्रभावी माध्यमों की कमी होती है। इसके लिए सूचना प्रौद्योगिकी, मोबाइल एप्स, और डिजिटल कृषि प्रसार के माध्यम से जानकारी का प्रसार किया जा सकता है। इसके अलावा, स्थानीय स्तर पर कृषि प्रसार अधिकारियों की नियुक्ति और कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष : कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालन में उन्नति एक सशक्त और प्रभावी माध्यम है, जिससे पशुपालकों को नई तकनीकों, वैज्ञानिक जानकारी और प्रबंधन पद्धतियों का लाभ मिलता है। इसके माध्यम से न केवल पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि होती है, बल्कि किसानों की आय और जीवन स्तर में भी सुधार होता है। हालांकि, इसके लिए कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन उचित योजना और क्रियान्वयन के साथ इन चुनौतियों को दूर किया जा सकता है। कृषि प्रसार के माध्यम से पशुपालकों को सशक्त बनाना और उन्हें नई तकनीकों से लैस करना भारतीय कृषि और पशुपालन उद्योग के सतत विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

❋❋❋

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के परिणाम

रोनक कूड़ी, नरेश कुमार, संतोष चौधरी एवं महेश कुमार पूनिया
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

परिचय

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक समस्या के रूप में उभर रहा है। यह केवल एक देश या क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए चिंता का विषय बनता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण भारत समेत दुनिया भर में बाढ़, सूखा, कृषि संकट और खाद्य सुरक्षा जैसी समस्याओं का खतरा बढ़ गया है। चूंकि भारत की एक बड़ी जनसंख्या (लगभग 60 प्रतिशत) आज भी कृषि पर निर्भर है, इसलिए कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को समझना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। कृषि सीधे तौर पर जलवायु कारकों पर निर्भर होती है, जैसे तापमान, वर्षा, आर्द्रता, और मौसम के अन्य मापदंड। वैश्विक जलवायु जोखिम सूचकांक 2021 के अनुसार, भारत उन दस देशों में शामिल है जो जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित हैं। जलवायु में हो रहे परिवर्तन कृषि को विशेष रूप से प्रभावित कर रहे हैं, क्योंकि यह क्षेत्र मुख्य रूप से लंबे समय तक मौसमी कारकों जैसे तापमान, वर्षा और आर्द्रता पर निर्भर होता है। जलवायु में हो रहे अप्रत्याशित बदलावों का असर न केवल कृषि उत्पादन पर पड़ रहा है, बल्कि यह खाद्य सुरक्षा, किसान आजीविका और वैश्विक आर्थिक स्थिरता के लिए भी गंभीर खतरा उत्पन्न कर रहा है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

1. फसल उत्पादन में गिरावट : वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण कृषि उत्पादन में कमी आ रही है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (IPCC) के अनुसार, जलवायु परिवर्तन का समग्र प्रभाव वैश्विक कृषि पर नकारात्मक होगा। हालांकि कुछ फसलें लाभान्वित हो सकती हैं, लेकिन कुल मिलाकर फसल उत्पादकता पर इसका प्रतिकूल असर अधिक होगा। भारत में 2010 से 2039 के बीच जलवायु परिवर्तन के कारण 4.5% से 9% तक उत्पादन में गिरावट की संभावना है। एक अध्ययन के मुताबिक, यदि औसत वैश्विक तापमान 2°C बढ़ता है, तो गेहूं का उत्पादन 17% तक कम हो सकता है। इसी प्रकार, धान के उत्पादन में भी 0.75 टन प्रति हेक्टेयर की कमी हो सकती है।

2. जल संसाधनों पर प्रभाव : ग्लेशियरों के पिघलने और वर्षा के असामान्य पैटर्न के कारण जल संसाधनों की उपलब्धता पर भी असर पड़ रहा है। सिंचाई के लिए आवश्यक जल की कमी होने से कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत की कई बड़ी नदियाँ, जो कृषि के लिए जल आपूर्ति का मुख्य स्रोत हैं, ग्लेशियरों से पोषित होती हैं। ग्लेशियरों के पिघलने की गति बढ़ने से नदियों के जल स्तर में दीर्घकालिक कमी आ सकती है, जिससे सिंचाई के लिए पानी का संकट और बढ़ेगा।

3. कृषि योग्य भूमि की कमी : जलवायु परिवर्तन के कारण भूमि की उर्वरता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। तापमान में बढ़ोतरी और अत्यधिक वर्षा के कारण भूमि की गुणवत्ता घट रही है, जिससे कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल कम हो रहा है। सूखे और बाढ़ जैसी घटनाओं से मृदा अपरदन (soil erosion) बढ़ रही है, जिससे कृषि योग्य भूमि बंजर होती जा रही है।

4. खाद्य सुरक्षा पर असर : कृषि उत्पादन में गिरावट और जलवायु संबंधी समस्याओं के कारण खाद्य सुरक्षा पर गंभीर खतरे उत्पन्न हो रहे हैं। उत्पादन घटने से खाद्य पदार्थों की उपलब्धता और गुणवत्ता पर असर पड़ता है, जिससे खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं। गरीब और विकासशील देशों में यह समस्या और भी विकराल रूप धारण कर सकती है, जहां लोग पहले से ही खाद्य असुरक्षा का सामना कर रहे हैं।

5. किसानों की आजीविका पर संकट : जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा प्रभाव किसानों की आजीविका पर पड़ रहा है। कृषि उत्पादकता में कमी, मौसम की अनिश्चितता, और सिंचाई के जल की अनुपलब्धता ने किसानों की कमाई को प्रभावित किया है। सूखा, बाढ़, और प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों को फसलों की बर्बादी का सामना करना पड़ता है, जिससे वे आर्थिक संकट में फंस जाते हैं। छोटे और सीमांत किसान, जो पहले से ही संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

6. नई चुनौतियाँ और अवसर : हालांकि जलवायु परिवर्तन से कृषि को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, वहीं कुछ फसलों और क्षेत्रों के लिए नए अवसर भी उत्पन्न हो रहे हैं। कुछ उच्च अक्षांशों वाले क्षेत्रों में, जहां पहले कृषि संभव नहीं थी, अब तापमान में वृद्धि के कारण खेती संभव हो सकती है। इसके अलावा, नई तकनीकों और जलवायु–लचीली फसल किस्मों के विकास के माध्यम से भी इन चुनौतियों का मुकाबला करने की कोशिश की जा रही है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के उपाय

खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, 2050 तक विश्व की जनसंख्या लगभग 9 अरब हो जाएगी, जिससे खाद्यान्न की मांग में भारी वृद्धि होगी। इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन को दोगुना करने की आवश्यकता होगी। भारत जैसे कृषि प्रधान देश को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए अभी से ठोस कदम उठाने की जरूरत है। कई उपाय हैं जिनके माध्यम से हम कृषि पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं। इन उपायों से कृषि को अधिक अनुकूल और टिकाऊ बनाया जा सकता है।

1. वर्षा जल का उचित प्रबंधन : जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि के साथ फसलों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में, वर्षा जल का सही तरीके से प्रबंधन करना एक कारगर उपाय साबित हो सकता है। वाटर शेड प्रबंधन के माध्यम से वर्षा जल को संरक्षित किया जा सकता है, जिसे सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जा सके। यह उपाय न केवल जल संकट को कम करेगा, बल्कि भू–जल पुनर्भरण में भी सहायक सिद्ध होगा।

2. जैविक और मिश्रित कृषि : रासायनिक खेती के कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ जाती है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देती है। इसके अलावा, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा की उत्पादकता घटती है और स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। जैविक खेती एक बेहतर विकल्प हो सकती है, जिससे मृदा की गुणवत्ता में सुधार होगा और प्रदूषण भी कम होगा। इसके साथ–साथ, मिश्रित कृषि अपनाने से विभिन्न फसलों का उत्पादन किया जा सकता है, जिससे जलवायु परिवर्तन का असर कम हो जाएगा।

मिश्रित कृषि में विविध फसलों के साथ खेती करने से फसलों की उत्पादकता भी बढ़ेगी और जोखिम भी कम होगा।

3. फसल चक्र अपनाना : फसल चक्र यानी विभिन्न फसलों को बदल–बदलकर उगाने की तकनीक को अपनाना जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक हो सकता है। इससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

4. जलवायु अनुकूल फसलों का उपयोग : ऐसी फसलों का चयन करना, जो बदलते मौसम के साथ अधिक सहनशील हों, जलवायु परिवर्तन से निपटने का एक कारगर तरीका है। इस तरह की फसलें तापमान और सूखे जैसी परिस्थितियों में भी अच्छी तरह से विकसित हो सकती हैं।

5. आधुनिक सिंचाई तकनीकें : ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी सिंचाई तकनीकों का प्रयोग जल की खपत को कम करता है और फसलों को आवश्यकतानुसार जल उपलब्ध कराता है। यह जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक होता है।

6. कृषि में नवीनतम तकनीकों का उपयोग : डिजिटल तकनीकें, जैसे कि मौसम पूर्वानुमान और स्मार्ट सेंसर, किसानों को मौसम में होने वाले बदलावों की पूर्व सूचना देकर तैयार रहने में मदद करती हैं। इसके जरिए किसान अपनी फसलों की सुरक्षा कर सकते हैं और बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

भारत सरकार द्वारा कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के प्रयास

भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। इसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रति अपनी कृषि व्यवस्था को अनुकूलित करना और सतत विकास के जरिए आर्थिक व पर्यावरणीय लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करना है। इस दिशा में, 2008 में प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (NAPCC) की शुरुआत की गई थी, जिसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों के लिए आठ राष्ट्रीय मिशन शामिल थे। इनमें से एक प्रमुख मिशन राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (NMSA) था, जो कृषि क्षेत्र पर केंद्रित है।

राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन : राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन वर्ष 2008 में शुरू किया गया। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक प्रभावी और अनुकूल बनाना था। इस मिशन के तहत कुछ प्रमुख लक्ष्यों पर ध्यान दिया गया:

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि करना।
2. टिकाऊ खेती को बढ़ावा देना।
3. प्राकृतिक जल संसाधनों और मृदा संरक्षण पर जोर देना।
4. फसल और क्षेत्र के अनुसार पोषण प्रबंधन करना।
5. भूमि और जल की गुणवत्ता को बनाए रखना।
6. शुष्क षि को प्रोत्साहित करना।

इसके साथ ही वैकल्पिक कृषि पद्धतियों को अपनाने और कृषि जोखिम प्रबंधन, कृषि संबंधी ज्ञान, सूचना और प्रौद्योगिकी पर विशेष बल दिया गया।

जलवायु अनुकूल कृषि में राष्ट्रीय नवाचार (NICRA)

राष्ट्रीय जलवायु अनुकूल कृषि नवाचार परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का एक प्रमुख नेटवर्क प्रोजेक्ट है, जिसे 2011 में शुरू किया गया। इस पहल का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन और जलवायु असुरक्षाओं से निपटने के लिए भारतीय कृषि की क्षमता को बढ़ाना है। इसके चार प्रमुख घटक हैं:

1. रणनीतिक अनुसंधान – जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए गहन अनुसंधान।
2. प्रौद्योगिकी प्रदर्शन–नई तकनीकों के प्रदर्शन के जरिए समाधान प्रस्तुत करना।
3. प्रायोजित और प्रतिस्पर्धी अनुदान–अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन और अनुदान प्रदान करना।
4. क्षमता निर्माण–वैज्ञानिकों और किसानों की क्षमता का विकास।

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील बनाना और किसानों को नवीनतम प्रौद्योगिकी और उपायों के माध्यम से अनुकूलित करना है। इसके अंतर्गत जलवायु जोखिम के लिए बेहतर रणनीतियों और कृषि तकनीकों का प्रदर्शन किया जा रहा है, जिससे किसानों को मौजूदा जलवायु चुनौतियों से निपटने में मदद मिलेगी।

अतः यह कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन वैश्विक और भारतीय कृषि व्यवस्था पर बड़े स्तर पर असर डालता है। ऊपर बताए गए सुझावों और तकनीकों को अपनाकर हम कृषि को जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से बचा सकते हैं। यह समय की अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा भविष्य में इसके गंभीर परिणाम झेलने पड़ सकते हैं। इस दिशा में भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयास भी सराहनीय हैं, जो भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक अनुकूल और सक्षम बनाने में मदद कर रहे हैं। इसलिए, हमें मिलकर पर्यावरण–मित्र तरीकों को प्राथमिकता देनी होगी, ताकि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित कर सकें और कृषि व्यवस्था को अनुकूल बना सकें।

निष्कर्ष : जलवायु परिवर्तन का कृषि पर कई तरह का प्रभाव पड़ता है, जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान, वर्षा और मौसम में बदलाव से कुछ क्षेत्रों में फसल उगाने की अवधि लंबी हो रही है। इससे खाद्य उत्पादन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के असर हो सकते हैं। बढ़ते तापमान, जल की कमी और समुद्री जल के अतिक्रमण से फसल उत्पादन प्रभावित हो रहा है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से संबंधित मौसमी घटनाएं अचानक कृषि उत्पादकता में गिरावट ला सकती हैं, जिससे बाजार में कीमतें तेजी से बढ़ सकती हैं। जलवायु परिवर्तन कृषि पर गंभीर प्रभाव डाल रहा है, जिससे खाद्य सुरक्षा, किसानों की आजीविका और वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियाँ पैदा हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन के परिणामों को कम करने और कृषि को अनुकूल बनाने के लिए नवाचार, नई तकनीक, और कृषि नीतियों में बदलाव की आवश्यकता है। किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने के लिए सटीक जलवायु जानकारी, सिंचाई के आधुनिक तरीकों, और जलवायु–सहिष्णु फसल प्रबंधन की ओर ध्यान देने की जरूरत है। इन प्रयासों से ही कृषि को जलवायु परिवर्तन के खतरों से बचाया जा सकता है।

❋❋❋

दाना मटर की उन्नत प्रजातियां एवं उत्पादन तकनीक

खजान सिंह, राजेश कुमार एवं के. सी. मीना
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

मटर लेग्यूमिनोसी कुल की एक महत्त्वपूर्ण फसल है। मटर की खेती सब्जी और दाल के लिये की जाती है। दाना मटर का उपयोग दाल, बेसन एवं छोले के रूप में अधिक किया जाता है। यह प्रोटीन और अमीनो एसिड का अच्छा स्त्रोत है। यह फसल पशुओं के लिए चारे के तौर पर भी प्रयोग की जाती है। मटर दाल की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पीले मटर का उत्पादन करना अति महत्वपूर्ण है, वर्षा आधारित क्षेत्र में पीला मटर की खेती अधिक लाभप्रद है। यह ठंडे इलाकों वाली फसल है। भारत में दाल वाली मटर 10.14 लाख हेक्टेयर में की जाती है, जिसकी औसत उत्पादकता लगभग 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। में दाल वाली मटर की खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आसाम, बिहार, हिमाचल प्रदेश व छत्तीसगढ़ में की जाती है। इसकी उत्पादकता बढाने के लिये उन्नत तकनीक अपनाना अति आवश्यक है।

भूमि का चुनाव : मटर की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। परन्तु उत्तम जल निकास वाली वलुई दोमट मिट्टी जिसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो सबसे अच्छी मानी जाती है। वह मिट्टी जिसमें पानी न ठहरता हो तथा पानी सोखने की क्षमता अधिक हो, बीजों के उत्पादनको बढ़ा देता है। आदर्श पीएच मान 6 n 7-5 माना जाता है। अत्यधिक अम्लीय तथा क्षारीय मिट्टी इसके उत्पादन को प्रभावित करती है।

भूमि की तैयारी : खरीफ फसल की कटाई के पश्चात एक गहरी जुताई कर पाटा चलाकर उसके बाद दो जुताई कल्टीवेटर या रोटावेटर से कर खेत को समतल और भुरभुरा तैयार कर लें । दीमक, तना मक्खी एवं लीफ माइनर की समस्या होने पर अंतिम जुताई के समय फोरेट 10 जी 10–12 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर खेत में मिलाकर बुवाई करें ।

उन्नत प्रजातियां

क्र. स.	प्रजाति का नाम	विमोचित वर्ष	अवधि (दिन)	उपज (क्वि./हे.)	विशेषता
1	अम्बिका	2000	100–125	18–19	लम्बी बढ़ने वाली, केंद्रीय खंड के लिए उपयुक्त, पाउडरी मिल्डयू के लिये प्रतिरोधी
2	आदर्श (आई.पी.एफ. 99–25)	2000	110–115	23–24	लम्बी बढ़ने वाली, केंद्रीय खंड के लिए उपयुक्त, पाउडरी मिल्डयू के लिये प्रतिरोधी, केंद्रीय खंड के लिए उपयुक्त
3	पूसा पन्ना (डी डी आर 27)	2001	105–110	17–181	बहुत शीघ्र पकने वाली, पाउडरी मिल्डयू के लिये प्रतिरोधी, उत्तरी पश्चिमी मैदानी खंड के लिए उपयुक्त
4	के.पी.एम. आर. 400	2001	110–115	20–22	बौनी किस्म एवं पाउडरीमिल्डयू के प्रति प्रतिरोधी एवं केंद्रीय खंड के लिए वर्षा आधारित क्षेत्र के लिये उपयुक्त
5	विकास (आई.पी.एफ. डी.–99–13)	2005	100–105	23–24	बौनी किस्म एवं पाउडरीमिल्डयू के प्रति प्रतिरोधी एवं केंद्रीय खंड के लिए उपयुक्त
6	प्रकाश (आई.पी.एफ. डी.–1–10)	2006	110–115	22–23	पाउडरीमिल्डयू व रतुआ के लिए प्रतिरोधी, केंद्रीय खंड एवं उत्तरी पर्वतीय खंड के लिये उपयुक्त
7	पंत पी 42	2007	130–135	22–23	लम्बी बढ़ने वाली, व्यापक अनुकूलनता, पाउडरी मिल्डयू के लिये प्रतिरोधी व रतुआ के लिए मध्यम प्रतिरोधी, उत्तरी पश्चिमी मैदानी खंड एवं उत्तरी पर्वतीय खंड के लिये उपयुक्त
8	आई.पी. एफ.डी.– 10–12	2014	110–115	22–25	बौनी किस्म, पाउडरीमिल्डयू के लिए प्रतिरोधी, हरे सूखे दानों वाली किस्म केंद्रीय खंड के लिये उपयुक्त
9	आई.पी. एफ.डी.– 12–2	2017	110	22–25	बौनी किस्म, पाउडरीमिल्डयू के लिए प्रतिरोधी, केंद्रीय खंड के लिये उपयुक्त
10	आई.पी. एफ.डी.– 2014–2	2018	105–110	22–23	बौनी, शीघ्र ओज युक्त किस्म, फली छेदक, माहु, पत्ती सुरंगक व नेमाटोड के लिए मध्यम प्रतिरोधी, केंद्रीय खंड के लिये उपयुक्त
11	पंत पी 243	2018	105–110	19–20	लम्बी बढ़ने वाली, पाउडरी मिल्डयू, रतुआ, एस्कोकाइटो झुलसा व जड़ गलन के लिए मध्यम प्रतिरोधी, केंद्रीय खंड के लिए उपयुक्त

12	एच एफ पी 1428	2020	120–125	25–26	बौनी, पाउडरी मिल्ड्यू, एस्कोकाइटा झुलसा व जड़ गलन के लिए प्रतिरोधी तथा रतुआ के लिए मध्यम प्रतिरोधी, उत्तरी पश्चिमी मैदानी खंड के लिए उपयुक्त
13	कोटा मटर (के पी एफ 101)	2020	110–115	19–21	दाना मध्यम आकार का व क्रीमी सफ़ेद रंग का चमकदार, यह किस्म छाछ्या, तुलासिता रोग व सूत्रकृमि के लिए सहिनशील है, पत्तियों के स्थान पर तंतु होने के कारण यह आड़ी नहीं गिरती है
14	पंत पी 347	2021	120–125	25–26	बौनी बारानी एवं सिंचित दशा के लिए उपयुक्त किस्म, पाउडरी मिल्ड्यू व एस्कोकाइटा झुलसा के लिए प्रतिरोधी तथा रतुआ व जड़ गलन के लिए मध्यम प्रतिरोधी, उत्तरी पश्चिमी मैदानी खंड के लिए उपयुक्त

बुवाई का उपयुक्त समय: मटर की खेती के लिए, अगेती किस्मों की बुवाई अक्टूबर के पहले सप्ताह से नवंबर के पहले सप्ताह तक करनी चाहिए। वहीं, मध्य और पिछेती किस्मों की बुवाई 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक करनी चाहिए।

कतार से कतार एवं पौधों से पौधों की दूरी: मटर की बुवाई लाइनों में करनी चाहिए. लाइन से लाइन की दूरी 30 सेंटीमीटर एवं पौधे से पौधे के दूरी 10 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। बुवाई कतार में सीडड्रिल, सीडकमफर्टीड्रिल से 4 से 5 से.मी. गहराई पर करें।

बीज की मात्रा: लम्बी बढ़ने वाली किस्म की बीज की दर 70–80 कि. ग्रा./हे तथा बौनी किस्म किस्म की बीज की दर 100 कि.ग्रा./हे बुवाई करनी चाहिए। मटर की खेती में, रोग रहित बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए।

बीजोपचार: बीज जनित रोगो से बचाव हेतु फफूंदनाशक दवा थायरम + कार्बनडाजिम (2रू1) 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज और रस चूसक कीटों से बचाव हेतु थायोमिथाक्जाम 3 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज दर से उपचार करें उसके बाद वायुमण्डलीय नत्रजन के स्थिरीकरण के लिये राइजोवियम लेग्यूमीनोसोरम और भूमि में अघुलशील फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तन करने हेतु पी.एस.वी. कल्चर 5–10 ग्रा. /कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें । कल्चर से उपचार करने के लिए आवश्यकतानुसार पानी गर्म करके 300 ग्राम गुड़ का घोल बना लेवें। घोल को ठंडा करने के बाद 3 पैकेट कल्चर इस घोल में मिलाएं। कल्चर मिले घोल में बीज को मिलकर छाया में सूखने के बाद बुवाई करें।

उर्वरक की मात्रा: फसल में अनुशंसित उर्वरक की मात्रा मिट्टी परीक्षण के आधार पर बुवाई के समय प्रयोग करे । मटर फसल मे 20रू40रू20रू20 किग्रा नत्रजनरू फास्फोरसरू पोटाशरू सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से अनुशंसा की गई है। खादों की पूरी मात्रा बुवाई से पूर्व कतारों के साथ डाल दें। मटर फसल मे सूक्ष्म पोषक तत्व अमोनियम हेप्टामोलिब्डेट 1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार कर बुवाई करें।

सिंचाई : अच्छे अंकुरण के लिए बिजाई से पहले सिंचाई जरूर करनी चाहिए। यदि इसकी खेती धान फसल के बाद की जाती है तो मिट्टी में पर्याप्त नमी होने पर, इसे सिंचाई के बिना भी बोया जा सकता है। बिजाई के बाद एक या दो सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई फूल निकलने से पहले और दूसरी फलियां भरने की अवस्था में करें। भारी सिंचाई से पौधों में पीलापन बढ़ जाता है और उपज में कमी आती है।

खरपतवार नियंत्रण : फसल में खरपतवार की समस्या होने पर व्हील हो या हेण्ड हो द्वारा निराई–गुड़ाई करे, जिससे फसल की जड़ क्षेत्र मे वायु संचार बढ़ जाता है और खरपतवार नियंत्रित होने से पौधे में शाखाऐं और उत्पादन में वृद्धि होती है। पहली निराई–गुड़ाई 2–3 पत्ते आने की अवस्था पर या बिजाई के 3–4 सप्ताह बाद की जाती है और आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निराई–गुड़ाई करें। मटर फसल में अंकुरण पूर्व पेंडीमिथलीन 30 ई सी 1.0 किलो सक्रीय तत्त्व/ हेक्टेयर (व्यावसायिक दर 3.0 लीटर / हे) को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव से खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम की जा सकती है ।

कीट एवं बीमारियों की रोकथाम: फसल को मुख्यतः लीफ माइनर शूट फ्लाई फली छेदक एवं पाउडरी मिल्ड्यू रोग से क्षति होती है। इनकी रोकथाम के लिए निम्न उपाय अपनाने चाहिए।

मटर के पत्तों का सुरंगी कीट (लीफ़ माइनर): लार्वा पत्तों में सुरंग बनाकर पत्ते को खाता है। जिस कारण 10 से 15 प्रतिशत तक फसल का नुकसान होता है। यदि इसका हमला दिखे तो डाइमैथोएट 30 ई सी 300मि.ली. को 80–100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में स्प्रे करें। जरूरत पड़ने पर 15 दिनों के बाद दोबारा स्प्रे करें।

शूट फ्लाई के कारण टहनी का अगला भाग मर जाता है एवं बढ़ोतरी रुक जाती है। इसका प्रकोप बीज उगने के 15–20 दिन बाद प्रारम्भ हो जाता है।

मटर का थ्रिप और चेपा: यह पत्तों का रस चुसते हैं जिस कारण पत्ता पीला हो जाता है और पैदावार कम हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए डाइमैथोएट 30 ई सी 400 मि.ली. को 80–100 लीटर पानी में डालकर प्रति एकड़ में स्प्रे करें। जरूरत पड़ने पर 15 दिनों के बाद दोबारा छिड़काव करें।

फली छेदक: यह मटरों की फसल का खतरनाक कीड़ा है। यदि इस कीड़े की रोकथाम जल्दी ना की जाये तो यह फूलों और फलियों को 10 से 90 प्रतिशत नुकसान पहुंचाता है। शुरूआती नुकसान के समय कार्बरिल 900 ग्राम को प्रति 100 लीटर पानी में डालकर प्रति एकड़ पर स्प्रे करें। जरूरत के अनुसार 15 दिनों के फासले पर दोबारा स्प्रे करें। ज्यादा नुकसान के समय 1 लीटर क्लोरपाइरीफास या एसीफेट 800 ग्राम को 100 लीटर पानी में डालकर प्रति एकड़ में स्प्रे करें।

बीटिल: यह कीट सिर्फ बीजों को खाता है। मादा कीट सुखे बीज के अन्दर छिद्र करके अण्डे देती है, जहाँ सूड़ी विकसित होती है, जो बीज का खाकर खोखला कर देती है। इसके नियंत्रण के लिए बीज भंडारगृह में धुआँ करके और बीजों की छटाई करके रखना चाहिए। यह कीट खेत में नुकसान न पहुँचाए, इसके लिए मैलाथियान 2 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। बीज के भण्डारण के समय क्लोरोपाइरीफास (10 मिली प्रति लीटर पानी) से उपचारित करके भंडारण करना चाहिए।

बीमारियां और रोकथाम : चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) रू पत्तों के निचली तरफ, शाखाओं और फलियों पर सफेद रंग के धब्बे पड़ जाते । फफूंद का प्रकोप पकाव की अवस्था पर अधिक होता है। ज्यादा प्रकोप के कारण पत्ते गिर भी जाते हैं। यदि इसका प्रकोप दिखे तो कैराथेन 40 ई सी 80 मि.ली. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में स्प्रे करें। 10 दिनों के अंतराल पर कैराथेन की स्प्रे दोहरावें करें।

फसल की कटाई : मटर की फसल किस्मों के अनुसार 105 से 130 दिन की अवधि में पक जाती है । फलियों के पकाव की अवस्था पर फसल की कटाई करनी चाहिए। उपज किस्म, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति और खेत में इसके प्रबंधन पर निर्भर करती है।

तकनीकी खेती की दिशा में बढ़ते कदम और रोजगार : एक सफलता की कहानी

राजेश कुमार शर्मा एवं प्रताप सिंह
यांत्रिक कृषिक फार्म उम्मेदगंज, कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न बागवानी योजनाओं के तहत संरक्षित खेती को गति मिल रही है। बागवानी योजनाओं के प्रयासों के कारण संरक्षित खेती का क्षेत्र लगभग 30,000 हेक्टेयर तक पहुंच चुका है। हालाँकि, किसानों को उत्पादन तकनीक के बारे में पूरी जानकारी नहीं होने के कारण संरक्षित खेती की वृद्धि, विशेषकर उत्तर भारतीय राज्यों में सफलता से बहुत दूर रही। हाल तक राजस्थान जैसे राज्यों में स्थिति अच्छी नहीं है, जहां पहली सफलता ड्रिप सिंचाई के माध्यम से हासिल की गई थी। आज के बदलते युग में जहां युवा खेती से दूरी बना रहे हैं, वहीं कुछ युवा ऐसे भी हैं, जो खेती–किसानी में नई–नई तकनीकियों को अपनाकर अपने क्षेत्र और आसपास के क्षेत्रों में सफलता का परचम लहरा रहे हैं। इसी युवा पीढ़ी में कृषि विश्वविद्यालय कोटा के छात्र श्री विशाल पाटीदार दूसरे पढ़े–लिखे युवाओं के लिए एक मिसाल के रूप में कार्य कर रहे हैं। वह एक बहुत अच्छे, प्रगतिशील और अनुकरणीय किसान के रूप में इस कार्य को संपन्न कर रहे हैं। ये राजस्थान के उन सभी परंपरागत किसानों के लिए प्रेरणा हैं जो बागवानी में उद्यम करना चाहते हैं और अपनी आय में सुधार करना चाहते हैं। उनके कार्य को देखने के लिए दूर–दूर से किसान समूह बनाकर आ रहे हैं।

श्री विशाल पाटीदार, पिता श्री शिवनारायण, आनंदा गाँव, असनावर, झालावाड़, राजस्थान के निवासी हैं। उनके परिवार में परंपरागत तौर से कृषि की जाती थी। उस खेती से परिवार पालना तथा घर का खर्च निकलना मुश्किल था। फिर श्री विशाल पाटीदार ने सोचा कि खेती को इस प्रकार से किया जाए, जिससे घर–परिवार की आमदनी बढ़े। फसल का उत्पादन अच्छा हो तथा इसे बाजार में बेचकर अच्छा मूल्य प्राप्त कर व्यवसाय का रूप दिया जा सके। इन सबको ध्यान में रखकर श्री विशाल ने कृषि विषय की तरफ अपना रुझान दिखाया और इंटरमीडिएट में कृषि विषय का चयन कर जेट टेस्ट पास करके उधानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, कृषि विश्वविद्यालय कोटा में स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। यहां पर उन्होंने 4 वर्ष बागवानी के विषयों की संपूर्ण जानकारी ली।

आधुनिक कृषि की शुरुआत : श्री विशाल ने अपने डिग्री कार्यक्रम के अंतिम वर्ष में उच्च मूल्य वाली बागवानी फसलों की संरक्षित खेती पर अनुभवात्मक शिक्षण कार्यक्रम पंजीकृत किया। इस अनुभवात्मक शिक्षण कार्यक्रम में उन्होंने संरक्षित खेती की बुनियादी बातों के साथ–साथ नर्सरी की तैयारी, गुणवत्तापूर्ण पौध उगाने, रोपाई, कटाई और छंटाई, अंतर शस्य क्रियाये, सुरक्षा उपाय और विपणन रणनीतियाँ आदि के संबंध में विभिन्न सब्जियों के उत्पादन पहलुओं को समझा। ''देखना – करना – विश्वास करना'' अवधारणा द्वारा उनके आत्मविश्वास के स्तर में वृद्धि हुई। न केवल ग्रीनहाउस के तहत सब्जी उत्पादन की उत्पादन तकनीक पर, बल्कि हाइड्रोपोनिक खेती और अच्छी कृषि पद्धतियों जैसे अन्य पहलुओं पर भी व्यापक प्रशिक्षण और चर्चाओं से लाभ हुआ। इसके साथ उन्होंने ''बागवानी फसलों की संरक्षित खेती'' पर विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी भाग लिया । जिसने उन्हें एक कृषि स्टार्टअप के बारे में सोचने और स्थापित करने के लिए प्रेरित किया और मदद की। उन्होंने कृषि के क्षेत्र में कुछ नया करने में गहरी रुचि दिखाई और सब्जियों की संरक्षित खेती शुरू करने की योजना बनाई। खेती को व्यवसाय बनाने की प्रेरणा श्री विशाल को वर्ष 2020–21 में शैक्षिक भ्रमण में विभिन्न कृषि अनुसंधान केंद्रों, कृषि विश्वविद्यालयों तथा कृषि विज्ञान केंद्रों, का भ्रमण कर अत्याधुनिक खेती की जानकारी लेने के बाद मिली।

उन्होंने नियमित रूप से इस संरक्षित खेती इकाई, उधानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखा। श्री पाटीदार लगभग 2000 वर्गमीटर में शेड नेट हाउस के निर्माण में लगे हुए थे, इसी बीच वे उच्च गुणवत्ता उपज की अच्छी आय सुनिश्चित करने के लिए झालावाड़, कोटा और जयपुर में विभिन्न विपणन संस्थानों और विशिष्ट बाजारों से भी जुड़े रहे। उन्होंने अपने डिग्री कार्यक्रम के दौरान 2000 वर्गमीटर क्षेत्र का एक शेड नेट हाउस स्थापित किया और मई 2021 में उन्होंने 2000 वर्गमीटर क्षेत्र के शेड नेट हाउस में एमिस्टार किस्म की पार्थेनोकार्पिक खीरे (बीज रहित) की पहली फसल की रोपाई की। संरक्षित खेती इकाई, उधानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ द्वारा समय समय पर उत्पादन और सुरक्षा प्रौद्योगिकियों के साथ–साथ सभी अच्छी कृषि क्रियायों का पालन करने की सलाह दी। खीरे की पहली फसल से 2000 वर्गमीटर क्षेत्र में 190 क्विंटल उच्च गुणवत्ता वाला पार्थेनोकार्पिक खीरा प्राप्त हुआ, जो मई 2021 में शुरू होकर जुलाई 2021 तक चला। उन्होंने पूरी उपज जयपुर के प्रमुख बाजारों में 33 रुपये प्रति किलोग्राम की प्रभावशाली दर पर बेचा। और लगभग 6.0 लाख रुपये का सकल आय प्राप्त किया।

संरक्षित खेती की सफलताओं एवं आय को देखते हुए श्री पाटीदार ने अपने फार्म पर शैड नेट हाउस का क्षेत्र बढ़ाने के लिए पिछले वर्षो मे 8000 वर्गमीटर क्षेत्र मे ओर शैड नेट हाउस लगाया है। जिससे इसका क्षेत्र 10,000 वर्ग मीटर हो गया हैं। इतना ही नहीं, वह दो क्यारियों के बीच की जगह का उपयोग पत्तेदार सब्जियों की अंतर–फसल लगाकर भी कर रहे हैं। श्री पाटीदार ने दिसंबर 2021 में प्लास्टिक लो टनल खेती के लिए 0.7 एकड़ में खरबूजा भी लगाया, जिससे श्री पाटीदार को बहुत अच्छा रिटर्न भी मिला है। अब वह इसी साल लो टनल के साथ–साथ संरक्षित खेती क्षेत्र को करीब 13000 वर्गमीटर तक विस्तारित करना चाहते हैं। वर्तमान मे कुल 10000 वर्गमीटर क्षेत्रफल से श्री पाटीदार लगभग 15.00 लाख रुपये प्रति वर्ष की शुद्ध आय प्राप्त कर रहे हैं। इसके अलावा वह हर दिन 10 लोगों को रोजगार प्रदान कर रहे हैं। वह अपने गांव के अन्य किसानों को भी सब्जियों की संरक्षित खेती के लिए अपने कार्यों से प्रोत्साहित कर रहे हैं।

अपने नए उद्यम की नवीनतम सफलता से उत्साहित, श्री विशाल पाटीदार, आज व्यापक दृष्टिकोण और नए आत्मविश्वास के साथ एक प्रगतिशील किसान हैं। वह परंपरागत किसानों से बढ़कर एक प्रगतिशील किसान के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनकी सफलता की कहानी निश्चित रूप से उन बेरोजगार युवाओं के मनोबल को बढ़ाने वाली है जो मुख्य रूप से देश के बड़े शहरों के पेरी–शहरी क्षेत्रों में कृषि उद्यम के वाणिज्यिक मोड में उद्यम करना चाहते हैं। श्री पाटीदार न केवल अपने क्षेत्र के बल्कि देश के दूर–दराज के हिस्सों के कृषक समुदाय के लिए एक आदर्श बनने जा रहे हैं।

बकरी पालन से मुनाफा

घनश्याम मीणा, दीपक कुमार, हरीश वर्मा एवं इन्दिरा यादव
कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के जोन द्वितीय कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान, जोधपुर के द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी पर 18 से 35 वर्ष के बेरोजगार युवक–युवतियों के लिए स्वरोजगार के लिए एक परियोजना चल रही है जिसका नाम है ''आर्या'' परियोजना अर्थात् युवाओं को कृषि की ओर आकर्षित करना एवं बनाये रखना है जिसके अन्तर्गत चार विषयों पर रोजगार परक प्रशिक्षण एवं सहयोग किया जा रहा है– बकरी पालन, मुर्गी पालन, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन, नर्सरी प्रबंधन।

इस परियोजना के अन्तर्गत कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी के द्वारा बकरी पालन में 71 युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया है जिसमें से 38 ने अपना स्वयं का बकरी पालन व्यवसाय शुरू कर दिया है। इन्हीं में से एक उद्यमी है, श्री प्रमोद गुर्जर, जो कि गांव–किशनपुरा, नमाना, जिला– बून्दी के रहने वाले है। कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी द्वारा प्रमोद गुर्जर को नस्ल सुधार के लिए सिरोही नस्ल का प्रजनक बकरा, टैग मशीन, टैग, खुर काटने का यंत्र इत्यादि उपलब्ध करवाये गए है।

श्री प्रमोद गुर्जर ने व्यावसायिक तौर पर बकरी पालन के लिए पूरे जिले में अपनी अलग पहचान बनाई है। प्रमोद गुर्जर 12वीं पास युवा है जो कि कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी के संपर्क में आये। केन्द्र की आर्या परियोजना के माध्यम से बकरी पालन पर वर्ष 2019–20 में दस दिवसीय प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद प्रमोद गुर्जर ने अपने गांव किशनपुरा में केन्द्र के सहयोग से वर्श 2020 में 10 बकरियों की इकाई स्थापित की। जिसको बढ़ाकर वर्तमान मे विभिन्न नस्लों की 110 बकरियां कर ली है।

श्री प्रमोद गुर्जर बताते है कि वे प्रतिवर्ष 20–25 बकरे बेचकर 2.5–3.0 लाख रू सालाना कमा लेते है। इसके साथ–साथ इकाई की वर्तमान स्टॉक वैल्यु 10–12 लाख के करीब है। प्रमोद गुर्जर बताते है कि कृषि विज्ञान केन्द्र के पशुपालन वैज्ञानिक डॉ. घनश्याम मीणा समय–समय पर तकनीकी सहयोग करते रहते है।

श्री प्रमोद गुर्जर बताते है कि वर्तमान में बकरी पालन उनका प्राथमिक व्यवसाय बन गया है, जो पूर्व में खेती पर आश्रित थे। वे बताते है कि बकरी पालन में उनके साथ–साथ घरवाले भी उनका सहयोग करते हैं। जिस वजह से मजदूरों पर होने वाला खर्च नहीं होता है। बकरी पालन से उनके घर के सदस्यों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है। पहले उनके पास साइकिल भी नहीं हुआ करती थी, परन्तु वर्तमान में उनके पास मोटर साइकिल है। वे अपने बच्चों को अच्छे विद्यालय में पढ़ा पा रहे है तथा उनके पोशण का स्तर भी बढ़ा है। श्री प्रमोद जी को बैंक ऑफ बड़ौदा की तरफ से वित्तीय सहयोग मिला है। बैंक ऑफ बड़ौदा की तरफ से किसानों के लिए प्रशिक्षण भी उनके फॉर्म पर आयोजित किया गया था।

वर्तमान में राष्ट्रीय पशुधन मिशन की 50 प्रतिशत अनुदान की योजना के कारण व बकरी पालन में अधिक मुनाफा होने के कारण उनके पास बहुत से लोग जानकारी के लिए आते है और कृषि विज्ञान केन्द्र, बूंदी पर प्रशिक्षण के लिए संपर्क करते है। प्रमोद गुर्जर को देखकर उनके गांव के व आसपास के कई युवाओं ने भी बकरी पालन शुरूकर इसे अपना रोजगार का साधन बनाया है।

❋❋❋